हज का पैग़ाम

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

हज का पैग़ाम

लेखक

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

लिप्यंतरण

शीबा परवीन

संपादन

मोहम्मद आरिफ़

विषय सूची

हज की तारीख़

हज एक आलमी इज्तिमाई इबादत है। इसकी तारीख़ें क़मरी महीने के मुताबिक़ तय की गई हैं। हज के मरासिम मक्का और उसके आस-पास के मुक़ामात पर पाँच दिनों के अंदर 8 ज़िल्हिज्जा से 12 ज़िल्हिज्जा तक अदा किए जाते हैं। हज की तारीख़ें पैग़ंबर इब्राहीम और पैग़ंबर इस्माईल से वाबस्ता हैं।

अल्लाह का यह मंसूबा था कि तौहीद की बुनियाद पर एक इंक़लाब बरपा किया जाए। इस मक़सद के लिए क़दीम दौर में अल्लाह ने बहुत से पैग़ंबर भेजे, लेकिन इन पैग़ंबरों के ज़रिये कोई टीम नहीं बनी। इसलिए क़दीम ज़माने में मतलूब इंक़लाब बरपा न हो सका। इसके बाद अल्लाह ने हज़रत इब्राहीम के ज़रिये एक नया मंसूबा बनाया। इस मंसूबे के तहत हज़रत इब्राहीम ने अपनी बीवी हाजरा और अपने बेटे इस्माईल को अरब के सहरा में बसा दिया। इस वाक़ये की तरफ़ क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में इशारा किया गया है—

"ऐ हमारे पालनहार, मैंने अपनी संतान को एक बंजर वादी में, जो खेती के लायक़ नहीं, तेरे घर के नज़दीक बसाया है।" (क़ुरआन, 14:37)

हाजरा के शौहर हज़रत इब्राहीम बिन आज़र तक़रीबन साढ़े चार हज़ार साल पहले इराक़ में पैदा हुए और 175 साल की उम्र पाकर उनकी वफ़ात हुई। उन्होंने अपने ज़माने के लोगों को तौहीद की दावत दी, लेकिन शिर्क और बुतपरस्ती का ग़लबा उन लोगों के ज़हन पर इतना ज़्यादा हो गया था कि वे तौहीद के पैग़ाम को क़बूल न कर सके। हज़रत इब्राहीम ने एक से ज़्यादा जनरेशन तक लोगों को तौहीद का पैग़ाम दिया, लेकिन उस ज़माने में शिर्क एक तहज़ीब की सूरत इख़्तियार करके लोगों की ज़िंदगी में इस तरह शामिल हो चुका था कि वे उसे अलग होकर सोच नहीं सकते थे। पैदा होते ही हर आदमी को शिर्क का सबक़ मिलने लगता था। यहाँ तक कि माहौल के असर से उसका ज़हन पूरी तरह शिर्क में ढल चुका था।

उस वक़्त अल्लाह के हुक्म से हज़रत इब्राहीम ने एक नया मंसूबा बनाया। वह मंसूबा यह था कि आबाद शहरों से बाहर ग़ैर-आबाद जगह पर एक नस्ल तैयार की जाए। इसी मक़सद के लिए हज़रत इब्राहीम ने हाजरा और इस्माईल को मक्का में आबाद किया। इस सहराई माहौल में लंबी मुद्दत तक नस्ल की बढ़ोतरी के ज़रिये एक जानदार क़ौम तैयार हुई। इसी क़ौम के अंदर पैग़ंबरे-इस्लाम हज़रत मुहम्मद की पैदाइश हुई। फिर इसी क़ौम के अंदर काम करके वह टीम बनी, जिसे अस्हाबे-रसूल कहा जाता है।

पैग़ंबरे-इस्लाम हज़रत मुहम्मद के मिशन के तहत जो अज़ीम तारीख़ बनी, वह सारी-की-सारी मंसूबा-ए-इलाही के तहत बनी। पैग़ंबरे-इस्लाम से पहले हज़ारों साल के दरम्यान ख़ुदा की तरफ़ से बहुत से पैग़ंबर आए। इन पैग़ंबरों के ज़माने में तौहीद का ऐलान तो हुआ, लेकिन तौहीद की बुनियाद पर कोई इज्तिमाई इंक़लाब न आ सका। जबकि अल्लाह को मतलूब था कि पैग़ंबर के ज़रिये एक ऐसा तेज़ इंक़लाब आए, जो शिर्क के दौर को ख़त्म करे और तौहीद का दौर दुनिया में लेकर आए।

आख़िरकार अल्लाह की यह मरज़ी हुई कि वह तारीख़ में दख़लअंदाज़ी करे और ख़ुसूसी नुसरत के ज़रिये वह इंक़लाब लाए, जो कि अल्लाह के तख़्लीक़ी मंसूबे के तहत ज़रूरी था। अल्लाह के आम मंसूबे के मुताबिक़ इस मंसूबे की तक्मील असबाब की सूरत में की गई। आख़िरी पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद इस इंक़लाब की बुनियादी कड़ी थे।

अल्लाह के इस ख़ुसूसी मंसूबे का आग़ाज़ चार हज़ार साल पहले हज़रत हाजरा, हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल के ज़रिये अरब के सहरा में हुआ। इस मंसूबे के तहत लंबी मुद्दत के दौरान एक ख़ुसूसी नस्ल तैयार की गई, जिसे बनू-इस्माईल कहा जाता है। इस नस्ल की आला ख़ुसूसियात की बुनियाद पर एक मुस्तशरिक़ ने इसे हीरो की एक नर्सरी का लक़ब दिया है। इसी ख़ुसूसी नस्ल में पैग़ंबरे-इस्लाम और आपके अस्हाब पैदा हुए। इसके बाद अल्लाह की बुलंद तदबीर के तहत बहुत से मुआफ़िक़ हालात सामने आए। यह 'अपने आग़ाज़ से अंजाम तक' एक बहुत ही आला नौईयत का ख़ुदाई मंसूबा था। पैग़ंबरे-इस्लाम और आपके अस्हाब के ज़रिये जो अज़ीम इस्लामी तारीख़ बनी, वह दरअसल इसी मंसूबा-ए-इलाही का नतीजा थी।

क़ुरआन में इस हक़ीक़त को बहुत ही साफ़ अल्फ़ाज़ में बयान किया

गया है कि पैग़ंबर और अस्हाब-ए-पैग़ंबर के ज़माने में जो तारीख़ी इंक़लाब आया, वह किसी आदमी का ज़ाती कारनामा न था, बल्कि वह सीधे तौर पर अल्लाह के एक बेहतर मंसूबे का नतीजा था। इस सिलसिले में क़ुरआन की दो आयतों का तर्जुमा इस तरह है—

"वे चाहते हैं कि अल्लाह की नूर को अपने मुँह से बुझा दें, जबकि अल्लाह अपनी नूर को पूरा करके रहेगा, चाहे काफ़िरों को यह कितना ही नापसंद हो। वही है जिसने भेजा अपने रसूल को हिदायत और सच्चे दीन के साथ, ताकि वह उसको सब मज़हबों पर ग़ालिब कर दे, चाहे शिर्क करने वालों को यह कितना ही नापसंद हो।" (क़ुरआन, 61:8-9)

पैग़ंबरे-इस्लाम हज़रत मुहम्मद ने भी इस हक़ीक़त को बार-बार बहुत ही साफ़ लफ़्ज़ों में बयान फ़रमाया है। इसी की एक मिसाल ये है कि आपके मिशन के आग़ाज़ के तक़रीबन 20 साल बाद मक्का फ़तह हुआ, जो कि उस वक़्त पूरे अरब में हर ऐतबार से मरकज़ की हैसियत रखता था। रिवायत में आता है कि मक्का के फ़तह के वक़्त जब आप एक विजेता की हैसियत से मक्का में दाख़िल हुए तो एह्सासे तवाज़ो से आपकी गर्दन झुकी हुई थी। यहाँ तक कि लोगों ने देखा कि आपकी दाढ़ी कजावे की लकड़ी को छू रही है। उस वक़्त काबा के दरवाज़े पर खड़े होकर आपने जो ख़ुत्बा दिया, उसमें ये अल्फ़ाज़ थे—

"एक अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं। अल्लाह ने अपना वादा सच कर दिया। उसने अपने बंदे (मुहम्मद) की मदद की और उसने दुश्मन की जमाअतों को तनहा शिकस्त दे दी।"

(सुनन अबी दाऊद, हदीस नंबर 4547)

'लब्बैक' यानी हाज़िर हो। कहने का मतलब यह नहीं है कि मैं मक्का में रहने के लिए हाज़िर हूँ। यह वतन छोड़कर आने का कलमा नहीं, रविश (चाल-चलन) छोड़कर आने का कलमा है। इसका मतलब यह है कि मैं तेरी फ़रमाबरदारी के लिए हाज़िर हूँ। मैं उसके लिए तैयार हूँ कि तू जो हुक्म दे, उस पर मैं दिल और जान से क़ायम हो जाऊँ। 'लब्बैक' का इक़रार आदमी हज के मुक़ाम पर करता है, लेकिन उसकी अमली तस्दीक़ वहाँ से लौटकर उसे अपने वतन में करनी पड़ती है, जहाँ उसे दिन-रात अपनी ज़िंदगी गुज़ारनी है।

क़ुर्बानी और इस्लाम

हज और ईद-उल-ज़ुहा के मौक़े पर सारी दुनिया के मुसलमान एक ख़ास दिन ख़ुदा के नाम पर जानवर की क़ुर्बानी करते हैं। यह क़ुर्बानी आम ज़िंदगी से कोई अलग चीज़ नहीं। इसका ताल्लुक़ इंसान की तमाम ज़िंदगी से है। इसका मतलब यह है कि अह्ले-ईमान को चाहिए कि वह क़ुर्बानी की स्पिरिट के साथ दुनिया में रहे। क़ुर्बानी की स्पिरिट तमाम इस्लामी अमल का खुलासा है।

क़ुरआन में बताया गया है— "इंसान और जिन्न को सिर्फ़ इसलिए पैदा किया गया है कि वे अल्लाह की इबादत करें।" इबादत क्या है? इसे एक हदीस-ए-रसूल में इस तरह बयान किया गया है— "तुम अल्लाह की इबादत इस तरह करो, जैसे तुम उसे देख रहे हो और अगर तुम उसे नहीं देखते तो वह तुम्हें देखता है।"

(सही अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 50; सही मुस्लिम, हदीस नंबर 8)

इस हदीस-ए-रसूल से मालूम होता है कि क़ुरआन के तसव्वुर-ए-इबादत के मुताबिक़ इंसान के लिए ज़िंदगी का सही तरीक़ा क्या है? वह तरीक़ा यह है कि इंसान ख़ुदा की हस्ती को इस तरह दरयाफ़्त करे कि उसे हर लम्हा ख़ुदा की मौजूदगी का अहसास होने लगे।

उसका शऊर इस मामले में इतना बेदार हो जाए कि उसे ऐसा महसूस होने लगे, जैसे वह ख़ुदा को देख रहा है। यह अहसास उसकी पूरी ज़िंदगी को ख़ुदाई रंग में रंग दे। उसके हर क़ौल और हर अमल से ऐसा महसूस होने लगे, जैसे कि वह ख़ुदा को देख रहा है। जैसे कि वह जो कुछ कर रहा है, ख़ुदा की सीधी निगरानी के तहत कर रहा है। इसी शऊर के साथ ज़िंदगी गुज़ारने का नाम इबादत है। यह दर्जा किसी आदमी को सिर्फ़ उस वक़्त मिलता है, जबकि उसने ख़ुदा को अपनी वाहिद फ़िक्र (sole concern) बना लिया हो।

अरकाने इस्लाम और हज

इबादत का ताल्लुक़ इंसान की पूरी ज़िंदगी से है। उनमें से पाँच चीज़ें बुनियादी इबादत की हैसियत रखती हैं। पैग़ंबरे-इस्लाम हज़रत मुहम्मद ने फ़रमाया— "इस्लाम की बुनियाद पाँच चीज़ों पर क़ायम है। इस बात की गवाही देना के एक ख़ुदा के सिवा कोई माबूद नहीं, मुहम्मद अल्लाह के बंदे और रसूल हैं, नमाज़ क़ायम करना, ज़कात अदा करना, हज करना, रमज़ान के पूरे रोज़े रखना।" इस तरह ये पाँच सतून हैं, जिनके ऊपर इस्लाम की इमारत खड़ी होती है। इमारत एक दिखाई देने वाली चीज़ है। इस हदीस में इमारती ढाँचे को बतौर मिसाल इस्तेमाल करते हुए इस्लाम की हक़ीक़त को बताया गया है। जिस तरह सतूनों के बग़ैर कोई इमारत खड़ी नहीं होती, ठीक इसी तरह उन पाँच अरकान के बग़ैर इस्लाम क़ायम नहीं होता। इस्लाम को क़ायम करने का मतलब यह है कि उन पाँच सतूनों को ज़िंदगी में क़ायम किया जाए।

इस्लाम के उन पाँच अरकान की एक स्पिरिट है और एक उसका फ़ॉर्म है। इसमें कोई शक नहीं कि असल अहमियत स्पिरिट की होती है, लेकिन फ़ॉर्म भी यक़ीनी तौर पर ज़रूरी है। जिस तरह जिस्म के बिना रुह नहीं, इसी तरह फ़ॉर्म के बिना इस्लाम नहीं। इस मामले में भी स्पिरिट का एहतमाम बहुत ज़रूरी है, लेकिन यह एहतमाम फ़ॉर्म के साथ हो सकता है, फ़ॉर्म के बग़ैर नहीं।

~ कलमा-ए-तौहीद ~

इन अरकान में से पहला रुक्न कलमा-ए-तौहीद है। इस कलमे का एक फ़ॉर्म है और इसी के साथ एक स्पिरिट है। इसका फ़ॉर्म यह है कि आप अरबी के मज़्कूरा अल्फ़ाज़ (कलमा-ए-शहादत) को अपनी ज़बान से अदा करें। कलमे की स्पिरिट मारिफ़त है, यानी ख़ुदा को दरयाफ़्त के दर्जे में पा लेना। कलमा-ए-तौहीद की वही अदायगी ऐतबार के लायक़ है, जो मार्फ़त की बुनियाद पर हो। मार्फ़त के बग़ैर कलमा पढ़ना सिर्फ़ कुछ अल्फ़ाज़ को मुंह से बोल देना है। वह हक़ीक़ी मायने में कलमा-ए-तौहीद नहीं।

यूनान का क़दीम फ़लसफ़ी अर्शमेदिस (Archimedes) इस खोजबीन में लगा हुआ था कि कश्ती पानी के ऊपर कैसे तैरती है। एक दिन वह पानी के हौज़ में लेटा हुआ नहा रहा था। अचानक उसे फ़ितरत के उस क़ानून की दरयाफ़्त हुई, जिसे बायोंसी का क़ानून (law of buoyancy) कहा जाता है। उस वक़्त उसे एहतेज़ाज़ (thrill) की कैफ़ियत पैदा हुई। वह अचानक हौज़ से निकला और यह कहता हुआ भागा कि मैंने पा लिया, मैंने पा लिया (eureka, eureka)।

इस मिसाल से समझा जा सकता है कि कलमे की अदायगी क्या है। कलमा-ए-तौहीद की अदायगी दरअसल दाख़िली मार्फ़त का एक ख़ारज़ी इज़हार है। यह हुक्म बिला शुबह सबसे ज़ियादा अहमियत का हामिल है, लेकिन यह अहमियत उसकी दाख़िली मार्फ़त की बिना पर है, न कि सिर्फ़ ज़बानी तलफ़्फ़ुज़ की बिना पर।

~ नमाज़ ~

इस्लाम का दूसरा रुक्न नमाज़ है। दूसरे अरकान की तरह नमाज़ का भी एक फ़ॉर्म है। जैसा की मालूम है कि यह फ़ॉर्म क़याम, रुकु और सजदों पर मबनी है। इसी के साथ नमाज़ की एक स्पिरिट है और वह स्पिरिट सरेंडर (surrender) है, यानी अपने आपको पूरी तरह ख़ुदा के हवाले कर देना। ख़ुदा को कामिल मायनों में अपना मरकज़-ए-तवज्जोह बना लेना। पूरे मायनों में ख़ुदा-रुख़ी ज़िंदगी (God-oriented life) इख़्तियार कर लेना। इसी स्पिरिट का दूसरा नाम क़ुरआन में 'ज़िक्रे-कसीर' (अल-हिज़ाब, 33:41) है। इसका मतलब यह हुआ कि ख़ुदा को बहुत ज़्यादा याद करते हुए ज़िंदगी गुज़ारना। नमाज़ का मक़सद भी क़ुरआन में ज़िक्र बताया गया है। (क़ुरआन, 20:14)

ज़िक्र का मतलब रस्मी तौर पर किसी क़िस्म की तस्बीह पढ़ना नहीं है, बल्कि हर मौक़े पर सच्चे अहसास के साथ ख़ुदा को याद करते रहना है।

जब आदमी दुनिया में ज़िंदगी गुज़ारता है तो वह अलग-अलग तरह के तजरबों से होकर गुज़रता है। उस वक़्त उसके अंदर वह चीज़ पैदा होनी चाहिए, जिसे क़ुरआन में तवस्सुम (अल-हिज्र, 15:75) कहा गया है, यानी हर दुनियावी तजरबे को ख़ुदाई तजरबे में कन्वर्ट करते रहना। हर चीज़ से रब्बानी ग़िज़ा हासिल करते रहना। हक़ीक़ी नमाज़ वही है, जो आदमी के अंदर यह सोच पैदा

कर दे कि वह हर चीज़ से अपने लिए तवस्सुम की ग़िज़ा हासिल करता है।

नमाज़ के फ़ॉर्म के साथ जब यह स्पिरिट शामिल हो जाए, तब ही किसी आदमी की नमाज़ हक़ीक़ी नमाज़ बनेगी, वरना हदीस-ए-रसूल की ज़बान में उससे कह दिया जाएगा— "जाओ फिर से नमाज़ पढ़ो, क्योंकि तुमने नमाज़ नहीं पढ़ी।" (सही अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 757)

~ रोज़ा ~

इस्लाम के अरकान में से तीसरा रुक्न रोज़ा है। रोज़े का फ़ॉर्म यह है कि आदमी सुबह से शाम तक खाना और पीना छोड़ दे। वह अपने दिन को भूख और प्यास की हालत में गुज़ारे। रोज़े की स्पिरिट सब्र है। हदीस में आया है— "हुवा शहरुस्सब्र।" यानी रमज़ान का महीना सब्र का महीना है।

(सही इब्ने- खज़ेमा, हदीस नंबर 1887)

सब्र क्या है? सब्र का मतलब यह है कि आदमी दुनिया में सेल्फ़ डिसिप्लीन की ज़िंदगी गुज़ारने लगे। वह अपनी ख़्वाहिशों पर रोक लगाए। वह ग़ुस्सा दिलाने के बावजूद ग़ुस्सा न हो। वह अपनी अना को घमंड न बनने दे। वह लोगों के दरम्यान नो प्रॉब्लम इंसान (no problem person) बनकर रहे। सामाजिक ज़िंदगी में जब उसे कोई शॉक लगे तो वह शॉक अपने ऊपर सहे। वह उसे दूसरों तक न पहुँचने दे।

~ ज़कात ~

इस्लाम का चौथा रुक्न ज़कात है। ज़कात का फ़ॉर्म यह है कि आदमी अपनी कमाई के एक हिस्से से अपनी ज़रूरतों को पूरा करे और अपनी कमाई का कुछ हिस्सा ख़ुदा के हुक्म के मुताबिक़ दूसरे इंसानों पर ख़र्च करे। यह ज़कात का फ़ॉर्म है। ज़कात की स्पिरिट इंसान की ख़ैरख़्वाही है, यानी तमाम इंसानों को अपना समझना। हक़ीक़ी मायनों में इंसान-दोस्ती रवैया इख़्तियार करना। सिर्फ़ अपने लिए जीने के बजाय सारी इंसानियत के लिए जीना। आदमी अगर ज़कात की रकम दे दे, लेकिन दिल से वह इंसानों का ख़ैरख़्वाह न बने तो उसकी ज़कात अधूरी ज़कात मानी जाएगी। ऐसे आदमी की ज़कात पूरे मायनों में ज़कात नहीं होगी।

~ हज ~

इस्लामी अरकान में से पाँचवाँ रुक्न हज है। हज के लफ़्ज़ी मायने हैं क़सद करके एक जगह से दूसरी जगह जाना। शरई इस्तिलाह में हज से मुराद वह इबादती सफ़र है, जिसमें आदमी अपने वतन से निकलकर मक्का (अरब) जाता है और वहाँ माहे-ज़िल्हिज्जा की मुक़र्रर तारीख़ों में हज के मरासिम अदा करता है और ख़ुदा के नाम पर जानवर को क़ुरबान करता है। यह हज का फ़ॉर्म है। हज की स्पिरिट क़ुर्बानी है। हज का फ़ॉर्म और हज की स्पिरिट, दोनों जब किसी इंसान की ज़िंदगी में इकट्ठा हों तो वह हज की इबादत करने वाला क़रार पाता है।

हज के दौरान मीना के मुक़ाम पर तमाम हाजी जानवर की क़ुर्बानी पेश करते हैं। उन्हीं तारीख़ों में दुनिया भर में अलग-अलग मुक़ामों पर मुसलमान ईद-उल-ज़ुहा मनाते हैं। ईद-उल-ज़ुहा हज की इबादत में एक क़िस्म की जुज़ई शिरकत है। ईद-उल-ज़ुहा के ज़रिये तमाम दुनिया के मुसलमान मक्का में किए जाने वाले हज के साथ अपनी वाबस्तगी का इज़हार करते हैं।

पैग़ंबरे-इस्लाम हज़रत मुहम्मद से पूछा गया कि ऐ ख़ुदा के रसूल, ये क़ुर्बानियाँ क्या हैं? आप ने फ़रमाया कि यह तुम्हारे बाप इब्राहीम की सुन्नत है।
(सुनन इब्ने- माजा, हदीस नंबर 3127)

इस हदीस से मालूम होता है कि हज के दौरान जो क़ुर्बानी दी जाती है, वह उस तरीक़े पर अमल करने के लिए होती है जिसका नमूना हज़रत इब्राहीम ने क़ायम किया था। इसलिए हज और क़ुर्बानी की हक़ीक़त को जानने के लिए ज़रूरी है कि उस पहलू से पैग़ंबरे-ख़ुदा हज़रत इब्राहीम की ज़िंदगी का मुताला किया जाए। इस मुताले से न सिर्फ़ यह होगा कि हमें हज और क़ुर्बानी का तारीख़ी पसमंज़र मालूम होगा, बल्कि उसकी असल हक़ीक़त को समझना भी हमारे लिए मुमकिन हो जाएगा।

हज या ईद-उल-अज़हा में क़ुर्बानी दरअसल हज़रत इब्राहीम की सुन्नत को दोबारा ज़िंदा करने का अहद है। इसलिए ज़रूरी है कि हज़रत इब्राहीम की ज़िंदगी की रोशनी में क़ुर्बानी की हक़ीक़त को समझने की कोशिश की जाए।

हज़रत इब्राहीम

हज़रत इब्राहीम ईसा मसीह से तक़रीबन 2000 साल पहले इराक़ के क़दीम शहर उर (Ur) में पैदा हुए। उन्होंने 175 साल से ज़्यादा उम्र पाई। उर क़दीम इराक़ की राजधानी था। मज़ीद यह कि यह इलाक़ा क़दीम आबाद दुनिया यानी मेसोपोटामिया का मरकज़ था। हज़रत इब्राहीम ने अपनी तमाम आला सलाहियतों और कामिल दर्दमंदी के साथ अपने ज़माने के लोगों को तौहीद की तरफ़ बुलाया। उस वक़्त के इराक़ी बादशाह नमरूद (Nemrud) तक भी अपनी दावत पहुँचाई, लेकिन कोई भी शख़्स आपकी दावत को क़बूल करने के लिए तैयार न हुआ यहाँ तक कि हुज्जत पूरी करने के बाद जब इराक़ से आप निकले आपके साथ सिर्फ़ दो इंसान थे— आपके भतीजे और आपकी बीवी।

हज़रत इब्राहीम से पहले मुख़्तलिफ़ ज़मानों और मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में ख़ुदा के पैग़ंबर आते रहे और लोगों को तौहीद की दावत देते रहे, लेकिन उन तमाम पैग़ंबरों के साथ यह हुआ कि लोग उनका इनकार करते रहे। उन्होंने पैग़ंबरों का का मज़ाक़ उड़ाया। (क़ुरआन, 36:30)

हज़रत इब्राहीम के ऊपर पैग़ंबर की तारीख़ का एक दौर ख़त्म हो गया। अब ज़रूरत थी कि दावत-इलल्लाह की नई मंसूबाबंदी की जाए। उस मंसूबे के लिए अल्लाह ने हज़रत इब्राहीम का इंतख़ाब किया। चुनांचे हज़रत इब्राहीम अपनी बीवी हाजरा और छोटे बच्चे इस्माईल के साथ इराक़ से निकले और मुख़्तलिफ़ शहरों से गुज़रते हुए आख़िरकार वहाँ पहुँचे, जहाँ आज मक्का आबाद है। एक रिवायत से मालूम होता है कि सफ़र फ़रिश्ते जिब्राईल की रहनुमाई में तय हुआ। (तारीख़ अल-तबरी, 1/254)

हाजरा हज़रत इब्राहीम की बीवी थी। उनसे एक औलाद पैदा हुई, जिसका नाम इस्माईल रखा गया। एक ख़ुदाई मंसूबे के तहत हज़रत इब्राहीम ने हाजरा और उनके छोटे बच्चे (इस्माईल) को अरब में मक्का के मुक़ाम पर ले जाकर बसा दिया, जो उस वक़्त बिलकुल ग़ैर-आबाद था। उस वाक़ये के बारे

में क़ुरआन में मुख़्तसर तौर पर यह हवाला मिलता है—

"और जब इब्राहीम ने कहा— ऐ मेरे रब ! उस शहर को अमन वाला बना और मुझे और मेरी औलाद को उससे दूर रख कि हम बुतों की इबादत करें। ऐ मेरे रब ! उन बुतों ने बहुत लोगों को गुमराह कर दिया। बस जिसने मेरी पैरवी की, वह मेरा है और जिसने मेरा कहा न माना, तो तू बख़्शने वाला मेहरबान है। ऐ हमारे रब ! मैंने अपनी औलाद को एक बिना खेती वाली वादी में तेरे मोहतरम घर के पास बसाया है, ताकि वह नमाज़ क़ायम करें। बस तू लोगों के दिलों को उनकी तरफ़ माइल कर दे और उनको फलों की रोज़ी अता फ़रमा, ताकि वह शुक्र करें।" (क़ुरआन, 14:35-37)

हाजरा के बारे में क़ुरआन में सिर्फ़ मुख़्तसर इशारा आया है। ताहम हदीस की मशहूर किताब सही बुख़ारी में हाजरा के बारे में तफ़्सीली रिवायत मौजूद है। यह रिवायत यहाँ नक़ल की जाती है—

"अब्दुलाह बिन अब्बास कहते हैं कि औरतों में सबसे पहले हाजरा ने कमरपट्ट बाँधा था ताकि सारा को उनके बारे में ख़बर न हो सके। फिर इब्राहीम हाजरा और उनके बच्चे इस्माईल को मक्का ले आए। उस वक़्त हाजरा इस्माईल को दूध पिलाती थी। इब्राहीम ने उन दोनों को मस्जिद के पास एक बड़े दरख़्त के नीचे बिठा दिया, जहाँ ज़मज़म है। उस वक़्त मक्का में एक शख़्स भी मौजूद न था और न ही वहाँ पानी था।

इब्राहीम ने ख़जूर का एक थैला और पानी एक मश्क वहाँ रख दिया और ख़ुद वहाँ से रवाना हुए। हाजरा उनके पीछे निकली और कहा कि ऐ इब्राहीम ! हमें इस वादी में छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं, जहाँ न कोई इंसान है और न कोई और चीज़। हाजरा ने इब्राहीम से यह बात कई बार कही और इब्राहीम उनकी तरफ देखते न थे। हाजरा ने इब्राहीम से कहा कि क्या अल्लाह ने आपको इसका हुक्म दिया है। इब्राहीम ने कहा कि हाँ। हाजरा ने कहा— फिर तो अल्लाह हमें नष्ट नहीं करेगा।

हाजरा लौट आई और इब्राहीम जाने लगे। यहाँ तक कि जब वह मक़ामे-सनीयह पर पहुँचे, जहाँ से वे दिखाई नहीं देते थे तो उन्होंने अपना रुख़ उधर

किया, जहाँ काबा है और अपने दोनों हाथ उठाकर यह दुआ की कि ऐ हमारे रब ! मैंने अपनी औलाद को एक ऐसी वादी में बसाया है, जहाँ कुछ नहीं उगता। यहाँ तक कि आप दुआ करते हुए लफ़्ज़ यशकुरून तक पहुँचे। (क़ुरान 14:37)

हाजरा इस्माईल को दूध पिलाती और मश्क में से पानी पीती। यहाँ तक कि जब मश्क का पानी खत्म हो गया तो वह प्यासी हुईं और उनके बेटे को भी प्यास लगी। उन्होंने बेटे की तरफ़ देखा तो वह प्यास से बेचैन था। बेटे की उस हालत को देखकर वह मजबूर होकर निकलीं। उन्होंने सबसे क़रीब पहाड़ सफ़ा को पाया। चुनाँचे वह पहाड़ पर चढ़ीं और वादी की तरफ़ देखने लगीं कि कोई शख़्स नज़र आ जाए, लेकिन वह किसी को न देख सकीं। वह सफ़ा से उतरीं। यहाँ तक कि जब वह वादी तक पहुँची तो अपने कुर्ते का एक हिस्सा उठाया, फिर वह थकावट से चूर इंसान की तरह दौड़ीं। वादी को पार करके वह मरवा पहाड़ पर आईं। उस पर खड़े होकर उन्होंने देखा तो कोई इंसान नज़र नहीं आया। इस तरह उन्होंने सफ़ा व मरवा के दरम्यान सात चक्कर लगाए।

अब्दुल्लाह बिन अब्बास कहते हैं कि रसूलुल्लाह ने फ़रमाया कि लोग उन दोनों के दरम्यान सई करते हैं। फिर वह मरवा पर चढ़ीं तो उन्होंने एक आवाज़ सुनी। वह अपने आपसे कहने लगीं कि चुप रह। फिर सुनना चाहा तो वही आवाज़ सुनी। उन्होंने कहा कि तूने अपनी आवाज़ मुझे सुना दी तो इस वक़्त हमारी मदद कर सकता है। देखा तो मक़ाम-ए-ज़मज़म के पास एक फ़रिश्ता है। जब फ़रिश्ते ने अपनी ऐड़ी या पंख ज़मीन पर मारा तो पानी निकल आया। हाजरा उसको हौज़ की तरह बनाने लगी और हाथ से उसके चरों तरफ़ मेंड़ बनाने लगीं। वह पानी चुल्लू से लेकर अपनी मश्क में भरतीं। वह जिस क़दर पानी भरतीं, चश्मा उतना ही ज़्यादा उबलता।

इब्ने-अब्बास कहते हैं कि रसूल अल्लाह ने फ़रमाया कि अल्लाह हाजरा पर रहम करे, अगर वह चुल्लू भर पानी नहीं लेतीं तो ज़मज़म एक बहता हुआ चश्मा होता। हाजरा ने पानी पिया और अपने बेटे को पिलाया। फ़रिश्ते ने हाजरा से कहा कि तुम नष्ट होने का अंदेशा न करो। यह अल्लाह का घर है। यह बच्चा और इसका बाप, दोनों इस घर को बनाएँगे और अल्लाह अपने घरवालों को नष्ट

नहीं करता। उस वक़्त घर (काबा) टीले की तरह ऊँचा था। जब सैलाब आता तो दाएँ-बाएँ से गुज़र जाता। कुछ दिनों तक हाजरा ने उसी तरह ज़िंदगी गुज़ारी। यहाँ तक कि जुरहुम क़बीले के कुछ लोग या जुरहुम के घरवाले कदा के रास्ते से आ रहे थे। वे मक्का के निचले हिस्से में उतरे। उन्होंने वहाँ एक परिंदे को देखा, जो घूम रहा था। वे कहने लगे कि यह परिंदा तो पानी के ऊपर घूमता है। हम उस वादी में रहे हैं, लेकिन यहाँ तो पानी न था। उन्होंने एक या दो आदमी को ख़बर लेने के लिए वहाँ भेजा। उन्होंने वहाँ पानी को देखा तो वापस लौट गए और लोगों को पानी की ख़बर दी। इस तरह वे लोग भी वहाँ आए।

रसूलुल्लाह ने फ़रमाया कि हाजरा पानी के पास थीं। उन्होंने हाजरा से कहा कि क्या तुम हमें यहाँ ठहरने की इजाज़त देती हो। हाजरा ने कहा कि हाँ, लेकिन पानी पर तुम्हारा कोई हक़ नहीं। उन्होंने कहा कि ठीक है।

अब्दुलाह बिन अबास कहते हैं कि रसूलुल्लाह ने फ़रमाया कि हाजरा ख़ुद चाहती थीं कि यहाँ इंसान आबाद हों। उन लोगों ने यहाँ पर क़याम किया और अपने घरवालों को भी बुला भेजा। वे भी यहीं ठहरे। जब मक्का में कई घर बन गए और इस्माईल जवान हो गए और इस्माईल ने जुरहुम वालों से अरबी ज़बान सीख ली और जुरहुम के लोग उनसे मुहब्बत करने लगे तो उन्होंने अपनी एक लड़की से उनका निकाह कर दिया।

इसी दरम्यान हाजरा का इंतक़ाल हो गया। जब इस्माईल का निकाह हो चुका तो इब्राहीम अपनी औलाद को देखने आए। उन्होंने वहाँ इस्माईल को नहीं पाया। चुनाँचे उनकी बीवी से उनके बारे में पूछा तो उसने कहा कि वह हमारे लिए रिज़्क़ की तलाश में निकले हैं। इब्राहीम ने उससे उनकी गुज़र-बसर और हालात के बारे में पूछा तो उसने कहा कि हम बड़ी तकलीफ़ में हैं। हम बहुत ज़्यादा तंगी में हैं। उसने इब्राहीम से शिकायत की। इब्राहीम ने कहा कि जब तुम्हारे शौहर आए तो उनको मेरा सलाम कहना और उनसे यह भी कहना कि वह अपने दरवाज़े की चौखट बदल दें।

जब इस्माईल आए तो उन्होंने कुछ महसूस कर लिया था। उन्होंने कहा की क्या तुम्हारे पास कोई आया था। उसने कहा कि हाँ, एक बूढ़ा शख़्स इस-

इस सूरत का आया था। उन्होंने आपके बारे में पूछा। मैंने उनको बताया। उन्होंने मुझसे पूछा कि हमारी गुज़र कैसे होती है तो मैंने कहा कि बड़ी तकलीफ़ और तंगी से। इस्माईल ने कहा कि क्या उन्होंने तुमसे और कुछ कहा है। तब उसने कहा कि हाँ, उन्होंने मुझसे आपको सलाम कहने के लिए कहा है और यह भी कहा है कि अपने दरवाज़े की चौखट बदल दो। इस्माईल ने कहा कि वह मेरे बाप थे। उन्होंने मुझे हुक्म दिया है कि मैं तुम्हें छोड़ दूँ। तुम अपने घरवालों के पास चली जाओ। इस्माईल ने उसे तलाक़ दे दिया और जुरहुम की दूसरी औरत से उन्होंने निकाह कर लिया।

इब्राहीम अपने मुल्क में ठहरे रहे, जिस क़दर अल्लाह ने चाहा। उसके बाद इब्राहीम इस्माईल के यहाँ आए तो एक बार फिर उन्होंने उनको नहीं पाया। वह इस्माईल की बीवी के पास आए और उससे इस्माईल के बारे में पूछा। उसने कहा कि वह हमारे लिए रिज़्क़ की तलाश में निकले हैं। इब्राहीम ने पूछा कि तुम लोग कैसे हो तो उसने कहा की हम लोग ख़ैरियत से हैं, और कुशादगी की हालत में हैं। उसने अल्लाह की तारीफ़ की। इब्राहीम ने पूछा कि तुम्हारा खाना क्या है। उसने कहा गोश्त। इब्राहीम ने पूछा कि तुम क्या पीते हो तो उसने बताया पानी। तब इब्राहीम ने दुआ की कि ऐ अल्लाह! तू उनके गोश्त और पानी में बरकत दे।

रसूलुल्लाह ने फ़रमाया कि उस वक़्त मक्का में अनाज न था और अगर वहाँ अनाज होता तो इब्राहीम उसमें भी बरकत की दुआ करते। मक्का के अलावा किसी दूसरे मुल्क के लोग अगर गोश्त और पानी पर गुज़र करें तो वह उन्हें मुवाफ़िक (suit) न आए। इब्राहीम ने कहा कि जब तुम्हारे शौहर आएँ तो तुम उनको मेरा सलाम कहना, और मेरी तरफ़ से उनको यह हुक्म देना कि वह अपने दरवाज़े की चौखट को बाक़ी रखें।

जब इस्माईल आए तो उन्होंने पूछा कि क्या तुम्हारे पास कोई शख़्स आया था। उसने का कि हाँ हमारे पास एक अच्छी सूरत के बुज़ुर्ग आए थे, और उसने आने वाले की तारीफ़ की। उन्होंने मुझसे आपके बारे में पूछा तो मैंने उन्हें बताया। फिर उन्होंने मुझसे हमारी गुज़र-बसर के बारे में पूछा। मैंने उन्हें बताया कि हम ख़ैरियत से हैं। इस्माईल ने कहा कि क्या उन्होंने तुमसे कुछ और भी कहा है. तो उसने कहा कि हाँ, उन्होंने आपको सलाम कहा है और आपको हुक्म दिया है कि आप अपने दरवाज़े की चौखट को बाक़ी रखें। तब इस्माईल ने बताया कि वह मेरे बाप थे और तुम चौखट हो। उन्होंने मुझे हुक्म दिया है कि

मैं तुम्हें अपने पास बाक़ी रखूँ।

फिर इब्राहीम अपने मुल्क में ठहरे रहे, जब तक अल्लाह ने चाहा। उसके बाद वह आए उस वक़्त इस्माईल ज़मज़म के क़रीब एक दरख़्त के नीचे बैठे हुए अपने तीर दुरुस्त कर रहे थे। जब इस्माईल ने इब्राहीम को देखा तो वह खड़े हो गए और फिर उन्होंने वही किया, जो एक बाप अपने बेटे से और एक बेटा अपने बाप से करता है। इब्राहीम ने कहा कि ऐ इस्माईल, अल्लाह ने मुझे हुक्म दिया है। इस्माईल ने कहा की फिर जो आप के रब ने हुक्म दिया है उसे कर डालिये। इब्राहीम ने कहा कि क्या तुम मेरी मदद करोगे। इस्माईल ने कहा कि मैं आपकी मदद करूँगा। इब्राहीम ने कहा कि अल्लाह ने मुझको यह हुक्म दिया है कि मैं यहाँ एक घर बनाऊँ, फिर इब्राहीम ने उसके गिर्द बुलंद टीले की तरफ़ इशारा किया। उस वक़्त उन दोनों ने घर की बुनियाद उठाई। इस्माईल पत्थर लाते थे और इब्राहीम तामीर करते थे। यहाँ तक कि जब दीवार ऊँची हो गई तो इस्माईल एक पत्थर लाए और उसको वहाँ रख दिया। इब्राहीम उस पत्थर पर खड़े होकर तामीर करते थे और इस्माईल उनको पत्थर देते थे और वे दोनों कहते थे— ऐ हमारे रब ! तू हमारी तरफ़ से यह क़बूल कर, बेशक तू बहुत ज़्यादा सुनने वाला और बहुत ज़्यादा जानने वाला है। पस वे दोनों तामीर करते और उस घर के इर्द-गिर्द यह कहते हुए चक्कर लगाते कि ऐ हमारे रब, तू हमारी तरफ से यह क़ुबूल कर। बेशक तू बहुत ज़ियादा सुनने वाला और बहुत ज़ियादा जानने वाला है।" (सही बुख़ारी, हदीस नंबर 3364)

ज़िब्हे-अज़ीम

इसी दौरान यह वाक़या पेश आया। हज़रत इब्राहीम ने ख़्वाब में देखा कि वे अपने बेटे इस्माईल को अपने हाथ से ज़बह कर रहे हैं। उस ख़्वाब के मुताबिक़ हज़रत इब्राहीम अपने बेटे को ज़बह करने के लिए तैयार हो गए, लेकिन यह एक तमसीली (symbolic) ख़्वाब था, यानी उसका मतलब यह था कि ख़ुदाई मंसूबे के मुताबिक़ अपने बेटे को तौहीद के मिशन के लिए वक़्फ़ (dedicate) कर दो। एक ऐसा मिशन जो अरब के सूखे और

बंजर सहरा में शुरू होने वाला था।

क़ुरान की सूरह नं० 37 में हज़रत इब्राहीम के वाक़ये का ज़िक्र है। आपने अपने एक ख़्वाब के मुताबिक़ अपने बेटे इस्माईल को ज़बह करने के लिए ज़मीन पर लिटा दिया। उस वक़्त अल्लाह की तरफ़ से फ़रिश्ते ने बताया कि तुम्हारी क़ुर्बानी क़बूल हो गई। अब तुम बेटे के बदले दुंबा ज़बह कर दो। चुनाँचे आपने ऐसा ही किया। उस मौक़े पर क़ुरआन में यह आयत आई है— "हमने इस्माईल को एक अज़ीम क़ुर्बानी के ज़रिये बचा लिया।"

(क़ुरआन, 37:107)

इस आयत में ज़िबहे-अज़ीम (अज़ीम क़ुर्बानी) का लफ़्ज़ इस्माईल के लिए आया है, न कि दुंबे के लिए। दुंबे को हज़रत इब्राहीम ने बतौर फ़िदया ज़िबह किया और इस्माईल को अज़ीमतर क़ुर्बानी के लिए मुंतख़ब कर लिया गया। यह अज़ीमतर क़ुर्बानी क्या थी? वह यह थी कि इसके बाद इस्माईल को अपनी माँ हाजरा के साथ मक्का के सहरा में आबाद कर दिया गया, ताकि उनके ज़रिये से एक नयी नस्ल तैयार हो। उस वक़्त यह इलाक़ा सिर्फ़ सहरा की हैसियत रखता था। वहां असबाबे हयात में से कोई चीज़ मौजूद न थी। इस लिए उसको क़ुरान में ज़ब्हे अज़ीम का दर्जा दिया गया। यह अज़ीम क़ुर्बानी अल्लाह का एक मंसूबा था, जिसे फरज़न्दे-इब्राहीम (इस्माईल) के ज़रिये अरब के शहर में अमल में लाया गया। क़ुरआन (सूरह इब्राहीम, 14:37) में इस वाक़ये का ज़िक्र मुख़्तसर इशारे के तौर पर आया है और हदीस में इसका ज़िक्र तफ़्सील के साथ मिलता है।

क़ुरआन में हज़रत इब्राहीम के इस ख़्वाब का ज़िक्र सूरह नं० 37 में आया है। उसमें बताया गया है कि पैग़ंबर इब्राहीम ने ख़्वाब के बाद जब अपने बेटे को ज़बह करना चाहा तो उस वक़्त खुदा के फ़रिश्ते ने आपको बताया कि आप बेटे के फ़िदया के तौर पर एक दुंबा ज़िबह कर दें। चुनाँचे हज़रत इब्राहीम ने ऐसा ही किया। (क़ुरआन, 37:107)

जैसा कि सही बुख़ारी की रिवायत से मालूम होता है कि उसके बाद हज़रत इब्राहीम ने अपनी बीवी हाजरा और अपने बेटे इस्माईल को अरब के

एक सहराई मक़ाम में आबाद कर दिया। यह वही मक़ाम था, जहाँ अब मक्का आबाद है। इसी मक़ाम पर बाद में हज़रत इब्राहीम और इस्माईल ने काबा की तामीर की और हज का निज़ाम कायम फ़रमाया।

अलामती ज़बीहा

हाजरा और इस्माईल को सहरा में इस तरह आबाद करने का मक़सद क्या था? इसका मक़सद था एक नई नस्ल बनाना। उस ज़माने की शहरी आबादी में मुशरिकाना कल्चर मुकम्मल तौर पर छा चुका था। उस माहौल में जो भी पैदा होता, वह मुशरिकाना माहौल का शिकार हो जाता। इस बिना पर उसके लिए तौहीद के पैग़ाम को समझना मुमकिन न रहता।

मुतमद्दिन शहरों से दूर सहरा में हाजरा और इस्माईल को इसलिए बसाया गया, ताकि यहाँ फ़ितरत के माहौल में उनके ज़रिये से एक नई नस्ल तैयार हो। एक नई नस्ल जो मुशरिकाना कंडीशनिंग से पूरी तरह पाक हो। तवालुद व तनासुल (प्रजनन) के ज़रिये यह काम जारी रहा। यहाँ तक कि बनी-इस्माईल की क़ौम वजूद में आई। इसी क़ौम के अंदर 570 ईसवी में पैग़ंबरे-इस्लाम मुहम्मद बिन अब्दुल्ला बिन अब्दुल मुत्तलिब पैदा हुए। हज़रत मुहम्मद को 610 ईसवी में अल्लाह ने नबी मुक़र्रर किया। उसके बाद आपने तौहीद के मिशन का आग़ाज़ किया। बनु इस्माईल के अंदर से आपको वह क़ीमती लोग मिले, जिन्हें अस्हाबे-रसूल कहा जाता है। उन लोगों को साथ लेकर आपने तारीख़ में पहली बार यह किया कि तौहीद की दावत को फ़िक्री मरहले से आगे बढ़ाकर इंक़लाब के मरहले तक पहुँचाया।

हज़रत इब्राहीम के जरिये जो अज़ीम दावती मंसूबा ज़ेरे-अमल आया, हज की इबादत गोया इसी का एक रिहर्सल है। ज़िल्हिज्जा के महीने की मख़्सूस तारीख़ों में सारी दुनिया के मुसलमान इकट्ठा होकर रिहर्सल के रूप में उस तारीख़ को दोहराते हैं, जो हज़रत इब्राहीम और उनकी औलाद के साथ पेश आई। इस तरह पूरी दुनिया के मुसलमान हर साल अपने अंदर यह अज़्म

ताज़ा करते हैं कि वे पैग़ंबर के उस नमूने को अपने हालात के मुताबिक़ मुसलसल दोहराते रहेंगे। हर ज़माने में वे दावत-इलल्लाह के उस अमल को मुसलसल ज़िंदा रखेंगे, यहाँ तक कि क़यामत आ जाए।

इस इब्राहीमी अमल में क़ुर्बानी को मरकज़ी दर्जा हासिल है। यह एक अज़ीम अमल है, जिसकी कामयाब अदायगी के लिए क़ुर्बानी की स्पिरिट नागुज़ीर तौर पर ज़रूरी है। उस क़ुर्बानी की स्पिरिट को मुसलसल तौर पर ज़िंदा रखने के लिए हज के ज़माने में मिना में और ईद-उल-अज़हा की सूरत में तमाम मुसलमान अपने-अपने मक़ाम पर जानवर की क़ुर्बानी करते हैं और ख़ुदा को गवाह बनाकर उस स्पिरिट को ज़िंदा रखने का अहद करते हैं। हज और ईद-उल-अज़हा के मौक़े पर जानवर की जो क़ुर्बानी की जाती है, वह दरअसल जिस्मानी क़ुर्बानी की सूरत में बामक़सद क़ुर्बानी के अज़्म के समान है। यह दरअसल दाख़िली स्पिरिट का ख़ारिजी मुज़ाहिरा है।

It is an external manifestation of an internal spirit.

आदमी के अंदर पाँच क़िस्म के हवास (senses) पाए जाते हैं। नफ़्सियाति तहक़ीक़ से मालूम हुआ है कि जब कोई ऐसा मामला पेश आए, जिसमे इंसान के तमाम हवास शामिल हों तो वह बात इंसान के दिमाग़ में ज़्यादा गहराई से बैठ जाती है। क़ुर्बानी की स्पिरिट को अगर आदमी सिर्फ़ मुजर्रद (abstract) शक्ल में सोचे तो वह आदमी के दिमाग़ में बहुत ज़्यादा ज़हन नशीन नहीं होगी। क़ुर्बानी का अमल इसी कमी की तलाफ़ी है।

जब आदमी अपने आपको वक़्फ़ करने के तहत जानवर की क़ुर्बानी करता है तो उसमें अम्लन उसके तमाम हवास शामिल हो जाते हैं। वह दिमाग़ से सोचता है। वह आँख से देखता है। वह कान से सुनता है। वह हाथ से छूता है। वह क़ुर्बानी के बाद उसके ज़ायक़े का तजरबा भी करता है। इस तरह इस मामले में उसके तमाम हवास शामिल हो जाते हैं। वह ज़्यादा गहराई के साथ क़ुर्बानी की स्पिरिट को महसूस करता है। वह इस क़ाबिल हो जाता है कि क़ुर्बानी की स्पिरिट उसके अंदर भरपूर तौर पर दाख़िल हो जाए। वह उसके गोश्त का और उसके ख़ून का हिस्सा बन जाए।

क़ुर्बानी की हक़ीक़त

हज या ईद-उल-अज़हा के मौक़े पर जानवर की क़ुर्बानी दी जाती है। इस क़ुर्बानी के दो पहलू हैं— एक उसकी स्पिरिट और दूसरा उसकी ज़ाहिरी सूरत। स्पिरिट के ऐतबार से क़ुर्बानी एक क़िस्म का अहद (pledge) है। क़ुर्बानी की सूरत में अहद का मतलब है अमली अहद (pledge in action)। अहद के इस तरीक़े की अहमियत को अमूमी तौर पर तस्लीम किया जाता है। इसमें किसी को भी इख़्तिलाफ़ नहीं।

यहाँ इस नोइयत की एक मिसाल दी जाती है, जिससे अंदाज़ा होगा कि क़ुर्बानी का मतलब क्या है। नवंबर, 1962 का वाक़या है। हिंदुस्तान की मशरिक़ी सरहद पर एक पड़ोसी ताक़त की जारहियत की वजह से ज़बरदस्त ख़तरा पैदा हो गया था। सारे मुल्क में सनसनीख़ेज़ी की कैफ़ियत छाई हुई थी।

उस वक़्त क़ौम की तरफ़ से जो मुज़ाहिरे हुए, उनमें से एक वाक़या यह था कि अहमदाबाद के 25 हज़ार नौजवानों ने मुश्तरका तौर पर यह अज़्म किया कि वे मुल्क के बचाव के लिए लड़ेंगे और मुल्क के ख़िलाफ़ बाहर के हमले का मुक़ाबला करेंगे, चाहे उस राह में उनको अपनी जान दे देनी पड़े। यह फ़ैसला करने के बाद उन्होंने यह किया कि उनमें से हर शख़्स ने अपने पास से एक-एक पैसा दिया और इसी तरह 25 हज़ार पैसे जमा हो गए। उसके बाद उन्होंने अपने उन पैसों को उस वक़्त के वज़ीरे-आज़म पंडित जवाहरलाल नेहरू की ख़िदमत में पेश किया। पैसे देते हुए उन्होंने हिंदुस्तानी वज़ीरे-आज़म से कहा कि यह 25 हज़ार पैसे हम 25 हज़ार नौजवानों की तरफ़ से अपने आपको आपके हवाले करने का निशान है।

To give ourselves to you.

मज़कूरा नौजवानों ने अपनी क़ुर्बानी का अलामती इज़हार 25 हज़ार पैसों की शक्ल में किया। 25 हज़ार पैसे ख़ुद असल क़ुर्बानी नहीं थे। वह तो असल क़ुर्बानी की सिर्फ़ एक अलामती टोकन थे। यही मामला जानवर की

क़ुर्बानी का है। क़ुर्बानी के अमल में जानवर की हैसियत सिर्फ़ अलामती है। जानवर की क़ुर्बानी के ज़रिये एक मोमिन अलामती तौर पर उस बात का अहद करता है कि वह इसी तरह अपनी ज़िंदगी को ख़ुदा की राह में पूरी तरह लगा देगा, इसीलिए क़ुर्बानी के वक़्त यह कहा जाता है कि अल्लाहुम्मा मिन्का वलका यानी ऐ ख़ुदा ! यह तूने ही दिया था, अब उसको तेरे सुपुर्द करता हूँ।

(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 2795)

हज के असर से यह होना चाहिए कि हाजी का ज़हन ख़ुदारुख़ी जहन हो जाए। ख़ुदा की याद आने लगे। उसका दिमाग़ ख़ुदा की बातों से भर जाए। अब तक उसकी सोच अगर अपनी ज़ात की तरफ़ चल रही थी तो अब उसकी सोच ख़ुदा की तरफ़ चल पड़े।

अना की क़ुर्बानी

क़ुरआन की सूरह अज़-ज़ुख़रूफ़ में फ़ितरत का एक क़ानून इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—हमने एक को दूसरे पर फ़ौक़ियत दी है, ताकि वे एक-दूसरे से काम लें। (क़ुरआन, 43:32)

क़ुरआन की इस आयत में सादे तौर पर तबक़ाती तफ़ावुत या तबक़ाती इम्तियाज़ की बात नहीं कही गई है, बल्कि इस आयत में तबक़ाती हिकमत की बात कही गई है। इस दुनिया में कोई बड़ा काम सिर्फ़ इज्तिमाई कोशिश से हो सकता है और इज्तिमाई कोशिश मुफ़ीद तौर पर सिर्फ़ उस वक़्त वजूद में आती है, जबकि अफ़राद-ए-इज्तिमा किसी एक शख़्स को अपना लीडर बनाने पर पूरी तरह राज़ी हो जाएँ। इज्तिमाई कोशिश नाम है लीडर का मातहत बनकर कोशिश करने का। जो लोग इस उसूल पर राज़ी न हों, वे बड़ा काम नहीं कर सकते।

क़ुरआन की इस आयत से सेकंडरी रोल की अहमियत मालूम होती है। अगर एक सौ आदमियों का इज्तिमा है तो उनमें से 99 लोगों को सेकंडरी रोल

पर राज़ी होना पड़ता है। उसके बाद ही यह मुमकिन होता है कि एक शख़्स लीडर बनकर अपना क़ायदाना रोल अदा कर सके। इस उसूल का मुज़ाहिरा रोज़ाना नमाज़ बा-जमाअत की शक्ल में किया जाता है। नमाज़ बाजमाअत यह पैग़ाम देती है कि अपने में से एक शख़्स को आगे खड़ा करके सब-के-सब बैक सीट पर चले जाओ। एक शख़्स को इमाम बनाकर सब-के-सब उसके मुक्तदी बनने पर राज़ी हो जाओ।

सेकंडरी रोल का मामला सिर्फ़ एक अमली बंदोबस्त का मामला है। जहाँ तक अहमियत की बात है, सेकंडरी रोल की अहमियत क़ायदाना रोल से भी ज़्यादा है। क़ायदाना रोल अदा करने वाले को अगर एक क्रेडिट मिलेगा तो सेकंडरी रोल अदा करने वाले को डबल क्रेडिट दिया जाएगा, क्योंकि सेकंडरी रोल अदा करने वाला शख़्स अपना रोल अदा करने के साथ मज़ीद यह करता है कि वह अपनी अना को क़ुरबान कर देता है। अना की क़ुर्बानी के बग़ैर सेकंडरी रोल की अदायगी मुमकिन नहीं और अना की क़ुर्बानी बिला शुबा तमाम क़ुर्बानियों में सबसे बड़ी क़ुर्बानी है।

अस्हाबे-रसूल

चार हज़ार साल पहले हज़रत इब्राहीम इराक़ क़दीम शहर उर (Ur) में पैदा हुए। वहाँ उन्होंने मुआसिर क़ौम के दरम्यान अपना दावती मिशन शुरू किया, लेकिन आपकी क़ौम की कंडीशनिंग (conditioning) इतनी ज़्यादा पुख़्ता हो चुकी थी कि वह आपके पैग़ाम को मानने के लिए तैयार नहीं हुई। इसके बाद अल्लाह के हुक्म से आपने एक नया मंसूबा तैयार किया। इस मंसूबे का आग़ाज़ इस तरह हुआ कि आपन अपनी बीवी हाजरा और अपने बेटे इस्माईल को अरब के सहरा में ले गए और वहाँ उन्हें उस ग़ैर-आबाद माहौल में बसा दिया।

इस ख़ुसूसी मंसूबे ज़रिये अरब में एक नई नस्ल पैदा हुई। इसी नस्ल में

570 ईस्वी में पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद पैदा हुए। इसी नस्ल में से वे लोग पैदा हुए, जिन्हें अस्हाबे-रसूल कहा जाता है। दरअसल अस्हाबे-रसूल पैग़ंबर हज़रत मुहम्मद के मुआसिर अह्ले-ईमान थे। अस्हाबे-रसूल को क़ुरआन में ख़ैर उम्मत (आले-इमरान, 3:110) कहा गया है। अस्हाबे रसूल इम्तियाज़ी औसाफ़ के हामिल थे। उनकी सिफ़तें क़ुरान में मुख़्तलिफ़ मक़ामात पर आयी हैं। इस सिलसिले में क़ुरआन की एक आयत इस तरह है—

"मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं। जो लोग उनके साथ हैं, वे मुनकिरों पर सख़्त हैं और आपस में मेहरबान हैं। तुम उनको रुकू में और सजदों में देखोगे। वे अल्लाह के फ़ज़्ल और उसकी रज़ामंदी की तलब में लगे रहते हैं। उनकी निशानी उनके चेहरों पर है सजदे के असर से। उनकी यह मिसाल तौरात में है और इंजील में उनकी मिसाल यह है कि जैसे खेती। जिसने अपना अंकुर निकाला, फिर उसको मज़बूत किया, फिर वह मोटा हुआ और फिर वह अपने तने पर खड़ा हो गया। वह किसानों को भला लगता है, ताकि उनसे मुनकिरों को जलाए। उनमें से जो लोग ईमान लाए और नेक अमल किये, उनके लिए अल्लाह ने माफ़ी का और बड़े अज्र का वादा किया है।" (क़ुरआन, 48:29)

क़ुरआन की इस आयत में अस्हाबे-रसूल के इम्तियाज़ी औसाफ़ को दो तारीख़ी पेशिनगोइयों के हवाले से बयान किया गया है। एक पेशीनगोई वह जो तौरात में आई है और दूसरी पेशिनगोई वह है जिसका ज़िक्र इंजील में मौजूद है। तौरात में अस्हाबे-रसूल का पेशगी ज़िक्र इन अल्फ़ाज़ में है— "वह दस हज़ार क़ुदसियों के साथ आया।"

'He came with ten thousand saints'

(Bible, Deuteronomy, 33:2)

बाइबल के इस हवाले के मुताबिक़ अस्हाबे-रसूल क़ुद्सी किरदार (saintly character) के हामिल थे। अस्हाबे-रसूल की यह क़ुद्सी सिफ़ात मज़कूरा क़ुरआनी आयत के मुताबिक़ हस्ब ज़ैल है:

असहाबे रसूल की सिफ़ात

~ साथ देने वाले ~

इन सिफ़ात में पहली सिफ़त वह है, जिसकी तरफ़ 'जो उसके साथ हैं' के अल्फ़ाज़ में इशारा किया गया है, यानी पैग़ंबरे-इस्लाम हज़रत मुहम्मद का साथ देने वाले। यह साथ उन्होंने कब दिया था? उन्होंने पैग़ंबरे-इस्लाम का साथ उस वक़्त दिया था, जबकि आपकी ज़ात के साथ अभी तारीख़ी अज़मत जमा नहीं हुई थी। उन्होंने पैग़ंबरे-इस्लाम को ख़ालिस जौहर (merit) की बुनियाद पर पहचाना। उन्होंने बज़ाहिर एक मामूली शख़्सियत को ग़ैर-मामूली शख़्सियत के रूप में दरयाफ़्त किया। उन्होंने तारीख़ी ऐतराफ़ (historical recognition) के दर्जे तक पहुँचने से पहले आपकी हैसियत का ऐतराफ़ किया। उन्होंने दौरे-अज़मत से पहले पैग़ंबर को उस वक़्त पहचाना, जबकि उसकी ज़ात हर क़िस्म की ज़ाहिरी अज़मत से पूरी तरह खाली थी।

उन्होंने मुहम्मद बिन अब्दुल्ला बिन अब्दुल मुत्तलिब को ख़ुदा के नुमाइंदे की हैसियत से दरयाफ़्त करके उसके आगे अपने आपको पूरी तरह सरेंडर कर दिया। अस्हाबे-रसूल ने हार्डशिप के वक़्त (क़ुरआन, 9:117) में पैग़ंबरे-इस्लाम का साथ दिया। यह साथ देना उसी वक़्त मुमकिन था, जबकि अस्हाबे-रसूल मज़कूरा इम्तियाज़ी सिफ़त के हामिल हो।

~ असर क़ुबूल न करने वाले ~

अस्हाबे-रसूल की दूसरी सिफ़त को क़ुरआन में 'मुन्किरों पर सख़्त हैं' के अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है। अह्ले-कुफ़्फ़ार पर शदीद होने का मतलब यह है कि वे -बातिल के मुक़ाबले में ग़ैर-असर पज़ीर (uneielding) किरदार के हामिल थे, यानि वह अपने माहौल से बेअसर रहते थे। वक़्त की ग़ालिब तहज़ीब उनको मरऊब करने वाली न थी। मुरव्वजा अफ़कार उनको डगमगा नहीं सकते थे। मफ़ादात का निज़ाम उनको अपनी राह से हटा नहीं सकता था। अस्हाबे-रसूल की दर्याफ्ते हक़ीक़त इतनी ज़्यादा गहरी थी कि वही उनकी पूरी शख़्सियत का वाहिद ग़ालिब हिस्सा बन गई।

~ रहम दिल ~

अस्हाबे-रसूल की तीसरी सिफ़त को क़ुरआन में 'आपस में मेहरबान' के अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है यानी आपस में एक-दूसरे के लिए आख़िरी हद तक ख़ैरख़्वाह होना। इस सिफ़त की ग़ैर-मामूली अहमियत उस वक़्त समझ में आती है, जबकि इस हक़ीक़त को सामने रखा जाए कि अस्हाबे-रसूल के दरम्यान वह तमाम इख़्तिलाफ़ात (differences) मौजूद थे, जो हर इंसानी गिरोह के दरम्यान फ़ितरी तौर पर पाए जाते हैं। इसके बावजूद वह सीसा पिलाई दीवार की तरह आपस में मुत्तहिद रहे (क़ुरआन, 61:4)। उन्होंने इस सलाहियत का सबूत दिया कि वे इख़्तिलाफ़ के बावजूद आपस में मुत्ताहिद हो सकते हैं। वह शिकायतों के बावजूद एक-दूसरे के ख़ैरख़्वाह बन सकते हैं। वे मनफ़ी असबाब के बावजूद अपने अंदर मुस्बत शख़्सियत की तामीर कर सकते हैं। अस्हाबे-रसूल की यही सिफ़त थी जिसकी बिना पर वे तौहीद का इंक़लाब ला सके जिसने तारीख़ का रुख़ मोड़ दिया।

~ ख़ुदसुपुर्दगी ~

अस्हाबे-रसूल की चौथी सिफ़त को ‘तुम उनको रुकू और सजदे में देखोगे’ के अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है। इसका मतलब यह है कि अस्हाबे-रसूल कामिल तौर पर अल्लाह के आगे झुके हुए थे। उनके अंदर कामिल दर्जे में ख़ुद सुपुर्दगी का मिजाज़ पैदा हो गया था। अल्लाह की बड़ाई की मार्फ़त उनको इतने बड़े दर्जे में हासिल हुई थी, जबकि इंसान शऊरी तौर पर अल्लाह की क़ुदरत-ए-कामिला की दरयाफ्त कर लेता है और उसके अंदर अपने आजिज़े मुतलक़ होने का शऊर इस तरह पैदा हो जाता है कि वह अपनी पूरी शख़्सियत के साथ अल्लाह के आगे झुक जाता है। उसके दिल व दिमाग़ में अल्लाह की बड़ाई के सिवा कोई और बड़ाई बाक़ी नहीं रहती। उसका एक मात्र कंसर्न (sole concern) अल्लाह वाहिद ला शरीक बन जाता है। यही तौहीदे-कामिल है और अस्हाबे-रसूल इस तौहीदे-कामिल में आख़िरी दर्जे पर पहुँचे हुए थे।

~ अल्लाह पर क़ामिल यक़ीन ~

अस्हाबे-रसूल की पाँचवीं सिफ़त वह है, जिसे क़ुरआन में 'वे अल्लाह का फ़ज़्ल और उसकी रज़ामंदी की तलब में लगे रहते हैं' के अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है। इसका मतलब यह है कि अस्हाबे रसूल की मार्फ़त ने उनके अंदर अल्लाह की ज़ात पर कामिल यक़ीन पैदा कर दिया था। वे अल्लाह पर कामिल ऐतमाद (confidence) वाले बन गए थे। वे यह समझने लग गए थे कि देने वाला भी अल्लाह है और छीनने वाला भी अल्लाह ही है। कामयाबी का सिरा भी अल्लाह के हाथ में है और नाकामी का सिरा भी अल्लाह के हाथ में है। वे हर चीज़ से ज़्यादा अल्लाह पर भरोसा करने वाले बन गए थे। उनकी उम्मीदें और ख़्वाहिशें तमामतर अल्लाह पर मुन्हसर हो गई थीं।

~ संजीदगी, तक़वा, और तवाज़ो ~

अस्हाबे-रसूल की छठी सिफ़त को क़ुरआन में 'उनकी निशानी उनके चेहरे पर है सजदे के असर से' के अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है। इससे मुराद यह है कि अस्हाबे-रसूल की दरियाफ़्त-ए-हक़ीक़त ने उनके अंदर आख़िरी हद तक वह सिफ़ात पैदा कर दी थी जिनको संजीदगी (sincerity), तक़वा और तवाज़ो कहा जाता है। यही कमाले-इंसानियत की पहचान है। यही वह सिफ़ात हैं, जो किसी इंसान (man) को आला इंसान (super man) बनाती हैं। इन सिफ़ात की हामिल शख़्सियत को रब्बानी शख़्सियत कहा जाता है। अस्हाबे-रसूल बिला शुबा इन सिफ़ात में कमाल दर्जे पर थे।

इसके बाद अस्हाबे-रसूल की उस ख़ुसूसियत को बयान किया गया है, जिसका ज़िक्र इंजील में हज़रत मसीह की ज़बान से इन अल्फ़ाज़ में आया है—

"उसने एक और तम्सील उनके सामने पेश करके कहा कि आसमान की बादशाही उस राई के दाने की मानिंद है, जिसको किसी आदमी ने लेकर अपने खेत में बो दिया। वह सब बीजों से छोटा तो है, लेकिन वह जब बढ़ता है तो सब तरकारियों से बड़ा और ऐसा दरख़्त हो जाता है कि हवा के परिंदे आकर

उसकी डालियों पर बसेरा करते हैं।" (बाइबल, मैथ्यू, 13:31-32)

Another parable He put forth to them, saying : "The kingdom of heaven is like a mustard seed, which a man took and sowed in his field, which indeed is the least of all the seeds, but when it is grown, it is greater than the herbs and becomes a tree, so that the birds of air come and nest in its branches." (Bible, Mathew, 13:31-32)

अस्हाबे-रसूल की जो सिफ़त तौरात में मुख़्तसर और क़ुरआन में तफ़्सील से बयान की गई है, उसका ताल्लुक़ अस्हाबे-रसूल की इन्फ़रादी ख़ुसूसियात से है। ये आला ख़ुसूसियातें हर सहाबी के अंदर कामिल दर्जे में पाई जाती थीं। इन ख़ुसूसियात ने हर सहाबी को एक मुस्तशरिक़ (orientalist) के अल्फ़ाज़ में हीरो बना दिया था।

अस्हाबे-रसूल की दूसरी सिफ़त जो इंजील और क़ुरआन दोनों में आई है। वह तम्सील की सूरत में उस इज्तिमाई इंक़लाब को बताती है, जो अस्हाबे-रसूल के ज़रिये बरपा हुआ था। यह तम्सील एक दरख़्त की सूरत में है। इस दरख़्त का बीज पैग़ंबरे-इस्लाम की पैदाइश से ढाई हज़ार साल पहले सहरा-ए-अरब में लगाया गया था। इसका आग़ाज़ हज़रत इब्राहीम और हज़रत हाजरा और हज़रत इस्माईल की क़ुर्बानियों के ज़रिये हुआ था।

यह पौधा नस्ल-दर-नस्ल आगे बढ़ता रहा। अस्हाबे-रसूल इसी तारीख़ी नस्ल का अगला हिस्सा थे। अस्हाबे-रसूल ने ग़ैर-मामूली क़ुर्बानी के ज़रिये यह किया कि उन्होंने तौहीद के नज़रिये को फ़िक्री इंक़लाब के दौर तक पहुँचा दिया। इस फ़िक्री इंक़लाब के बाद इंसानी तारीख़ में एक नया प्रोसेस (process) जारी हुआ। बाद की आलमी तब्दीलियाँ इस इंक़लाबी अमल का नतीजा थीं। फ्रांसीसी मुवर्रिख़ हेनरी पेररिन (वफ़ात : 1935) ने इस इंक़लाबी वाक़ये का ऐतराफ़ इन अल्फ़ाज़ में किया है—

"इस्लाम ने ज़मीन के नक़्शे को बदल दिया। तारीख़ के रिवायती दौर का कामिल ख़ात्मा हो गया।"

"Islam changed the face of the globe, the traditional order of history was overthrown."

दावत का बाग़

‘किसानों को भला लगता है’ के अलफ़ाज़ में एक तारीख़ी पसमंज़र की तरफ़ इशारा है। रसूल और अस्हाबे-रसूल के पहले की जो दावती तारीख़ है, उसमें बार-बार ऐसा हुआ कि ख़ुदा के दाइयों ने दावत का बीज डाला, लेकिन वह बढ़कर एक शादाब दरख़्त न बन सका। यह वाक़या पहली बार अस्हाबे-रसूल के ज़रिये पेश आया। दावत के अमल में ये इरतक़ा सारे ज़मीन और आसमान के लिए बेपनाह ख़ुशी का कारण था। जो दावत-ए-तौहीद को एक शादाब बाग़ की सूरत में देखने के लिए हज़ारों साल से उसका इंतज़ार कर रहे थे।

अज़ीम वाक़या

‘ताकि उनसे मुन्किरों को जलाये’ का मतलब यह है कि वे अह्ले-बातिल जो हक़ का फ़रोग़ नहीं देखना चाहते थे, उनके लिए हक़ के फ़रोग़ का यह अज़ीम वाक़या बेपनाह मायूसी का सबब बन गया। उनकी हज़ारों साल की खुशियाँ ख़ाक में मिलकर रह गईं। उनका यह हौसला आख़िरी तौर पर ख़त्म हो गया कि वे हक़ को हमेशा मग़लूब रखेंगे और उसको कभी उभरने का मौक़ा नहीं देंगे। इस मायूसी में दोनों गिरोह यकसा तौर पर शरीक थे— बातिलपरस्त इंसान भी और इब्लीस का दुश्मने-हक़ काफ़िला भी। हक़ की यह कामयाबी दोनों के लिए ही उनके मंसूबों के ख़ात्मे के हम्माना बन गई।

ईमान और अमले सालेह

मज़्कूरा आयत में आख़िरी बात यह कही गई है— उनमें से जो लोग ईमान लाए और उन्होंने नेक अमल किये , अल्लाह ने उनसे माफ़ी का और

बड़े अज्र का वादा किया है। यह बशारत सीधे तौर पर अस्हाबे-रसूल के लिए है और बिल्वस्ता तौर पर क़यामत तक के उन तमाम लोगों के लिए है जो अस्हाबे-रसूल के रोल को दरयाफ़्त करें और बाद के ज़माने में उसको तसल्सुल जारी रखें। तसल्सुल जारी रखने का यह अमल कोई सादा अमल नहीं। इसके लिए ऐसे अफ़राद की दरकार है, जिनके अंदर तख़्लीक़ी फ़िक्र हो और जिनके अंदर मुजद्दिदाना सलाहियत हो। बाद की नस्लों में जो लोग ईमान और आमाले-सालिहा की इस आला सलाहियत का सबूत देंगे। वह सब मज़्कूरा क़ुरआनी बशारत में शामिल होते चले जाएँगे।

इस इब्राहीमी मंसूबे पर ग़ौर कीजिए तो मालूम होगा कि हज़रत इब्राहीम की क़ुर्बानी, क़ुर्बानी बराए दावत थी। इसका मतलब यह था कि इराक़ के तजरबे की रौशनी में अरब में एक नया दावती मंसूबा बनाया जाए, जो नतीजे के ऐतबार से ज़्यादा मुअस्सिर साबित हो। जानवर के ज़बीहा की सूरत में इस मंसूबे में शामिल अफ़राद को पेशगी तौर पर यह बताया गया कि तुम्हें उस मंसूबे की कामयाब तक्मील के लिए एक ऐसे पुरमुशक़्क़त कोर्स से गुज़ारना होगा, जो गोया ज़बीहा (salaughter) जैसे तजरबे के बराबर होगा।

अब वक़्त आ गया है कि मुसलमान दोबारा हज़रत इब्राहीम की उस तारीख़ को दोहराएँ। मौजूदा ज़माने में वे दोबारा यह करें कि शिकायत के ज़हन को मुकम्मल तौर पर ख़त्म कर दें। वे रद्देअमल की सरगर्मियों से मुकम्मल तौर पर अपने को बचाएँ। तशद्दुद की सरगर्मियों को छोड़कर पुरअमन दावत का मंसूबा बनाएँ। वे दोबारा जज़्बात की क़ुर्बानी का सबूत दें। मौजूदा ज़माने में भी बज़ाहिर तम्सीली क़ुर्बानी का सिलसिला जारी रहेगा, लेकिन स्पिरिट के ऐतबार से उन्हें अपने आपको मुकम्मल तौर पर बदलना होगा। इब्राहीम और इस्माईल के ज़माने में अगर डेज़र्ट थेरेपी (desert therapy) का तरीक़ा इख़्तियार किया गया था तो मुसलमानों को सब्र थेरेपी का तरीक़ा इख़्तियार करना होगा।

मिल्लते-इब्राहीम

एक साहब ने सवाल किया कि क़ुरआन में एक से ज़्यादा बार इत्तेबा-ए-मिल्लते-इब्राहीम का हुक्म दिया गया है। यह मिल्लते-इब्राहीम क्या है? बराहे करम वाज़ेह करें। (एक क़ारी, अल-रिसाला, लखनऊ)

इस सवाल का जवाब यह है कि वह चीज़ जिसको हम मिल्लते-इब्राहीम या इब्राहीमी मिल्लत कहते हैं, वह वही है जिसका दूसरा नाम इस्लाम है। असल यह है कि इस वक़्त दुनिया में तीन बड़े आसमानी मज़ाहिब हैं—दीन-ए-यहूद, दीन-ए-नसारा और दीन-ए-मुहम्मद। इन तीनों मज़ाहिब के मूरिसे आला हज़रत इब्राहीम थे। इसीलिए हज़रत इब्राहीम को क़ुरआन में इमाम अल-नास (अल-बक़रह, 2:124) कहा गया है। तीनों मज़ाहिब के बानी हज़रत इब्राहीम की नस्ल से ताल्लुक़ रखते हैं। हज़रत इब्राहीम की इसी जामिईयत की बिना पर क़ुरआन में उन्हें उम्माह (क़ुरआन, 16:120) कहा गया है।

हज़रत इब्राहीम तक़रीबन चार हज़ार साल पहले क़दीम इराक़ में पैदा हुए। हज़रत इब्राहीम एक साहिबे किताब पैग़ंबर थे (क़ुरआन, 87:19)। अगरचे आज उनकी किताब महफ़ूज़ नहीं। इसी तरह बाक़ी तीनों मज़ाहिब के अंबिया में से हज़रत मूसा और हज़रत मसीह साहिबे किताब पैग़ंबर थे। ताहुम उनकी किताबें भी आज पूरी तरह महफ़ूज़ हालत में नहीं हैं।

हज़रत मुहम्मद ने इस बारे में यह कहा कि मैं उसी दीन को लेकर आया हूँ, जिस दीन को लेकर हज़रत इब्राहीम आए थे (क़ुरआन, 16:123)। इस ऐतबार से रसूलुल्लाह का मिशन दीन-ए-इब्राहीम की तज्दीद का मिशन था। रसूलुल्लाह को यह ख़ुसूसियत हासिल हुई कि आपका लाया हुआ दीन हर ऐतबार से महफ़ूज़ दीन था और अब हक़ के मुतलाशी को इसी दीन-ए-मुहम्मद की तरफ़ रुजूअ करना है, क्योंकि अब अल्लाह का दीन अपनी महफ़ूज़ हालत में सिर्फ़ दीन-ए-मुहम्मदी में पाया जाता हैं। मक्का के क़ुरैश अगरचे अमलन शिर्क पर क़ायम थे, लेकिन वे अपने मज़हब को हज़रत इब्राहीम के साथ

वाबस्ता करते थे। इसलिए वसीअतर पहलू से क़ुरैश भी उस खिताब में शामिल हैं। यहूद और नसारा इस ख़िताब में सीधे तौर पर शामिल थे और क़ुरैश बिल्वास्ता तौर पर।

हज की इज्तिमाई अहमियत

हज इस्लाम की एक निहायत अहम सालाना इबादत है। यह क़मरी कैलेंडर के आख़िरी महीने ज़ुलहिज्जा में अदा किया जाता है। हज की इबादत के मरासिम बैतुल्लाह में और उसके आस-पास के मुक़ामात पर अदा किए जाते हैं, जो अरब में वाक़ेअ हैं। इस इबादत को तमाम इबादात का जामिअ कहा जाता है। चुनाँचे इस इबादत में हर क़िस्म के इबादती पहलू पाए जाते हैं। इन्ही में से एक इज्तिमाई पहलू भी है। हज की इबादत में इज्तिमाइयत का पहलू बहुत नुमायाँ तौर पर मौजूद है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (1984) में हज की तफ़्सील देते हुए यह जुमला लिखा गया है—

About 2,000,000 persons perform Hajj each year, and the rite serves as a unifying force in Islam by bringing followers of diverse background together in religious celebration.

(V.IV. p. 844)

तक़रीबन दो मिलियन आदमी हर साल हज करते हैं और यह मुख़्तलिफ़ मुल्कों के मुसलमानों को एक मज़हबी तक़रीब में इकट्ठा करके इस्लाम में इत्तिहादि ताक़त का काम करती है।

क़ुरआन में हज का हुक्म देते हुए यह अल्फ़ाज़ आए हैं—

“ख़ुदा ने बैतुल्लाह को लोगों के लिए मसाबा बनाया और उसको अमन की जगह बना दिया। मसाबा के मायने अरबी ज़बान में तक़रीबन वही हैं, जिसको आजकल की ज़बान में मरकज़ कहा जाता है, यानी वह जगह जहाँ लोग जमा हों, जिसकी तरफ़ सब लोग रुजूअ करें, जो सबका मुश्तरक

मरकज़ और जोड़ने वाला हो।

हज की इबादत के लिए हर साल सारी दुनिया के मुसलमान आते हैं। 2012 में उनकी तादाद सालाना तक़रीबन तीन बिलियन थी। हज के मौसम में मक्का और उसके आस-पास हर तरफ़ आदमी-ही-आदमी दिखाई देने लगते हैं। ये लोग मुख़्तलिफ़ ज़बानें बोलते हैं। उनके हुलिए अलग-अलग होते हैं, मगर यहाँ आने के बाद सबकी सोच एक हो जाती है। सब एक अल्लाह की इबादत करते हैं। हज के दौरान वह उनकी तमाम तवज्जह का मरकज़ बना रहता है। इस तरह हज एक ऐसी इबादत बन जाता है, जो अपने तमाम आमाल और तक़रीबात के साथ इंसान को इज्तिमाइयत और मरकज़ीयत का सबक़ दे रहा है।

हज की तारीख़ हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल की ज़िंदगी से वाबस्ता है। ये दोनों हस्तियाँ वे हैं, जिनको न सिर्फ़ मुसलमान ख़ुदा का पैग़ंबर मानते हैं, बल्कि दूसरे बड़े मज़ाहिब के लोग भी उनको अज़ीम पैग़ंबर तस्लीम करते हैं। इस तरह हज के अमल को तारीख़ी तौर पर तक़द्दुस और अज़मत का वह दर्जा मिल गया है, जो दुनिया में किसी दूसरे अमल को हासिल नहीं।

हज़रत इब्राहीम क़दीम इराक़ में पैदा हुए। हज़रत इस्माईल उनके साहबज़ादे थे। उस वक़्त इराक़ एक शानदार तमद्दुन का मुल्क था। आज़र हज़रत इब्राहीम के वालिद और हज़रत इस्माईल के दादा थे। उन्हें इराक़ के सरकारी निज़ाम में आला ओहदेदार की हैसियत हासिल थी। हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल के लिए इराक़ में शानदार तरक़्क़ी के आला मौक़े खुले हुए थे, लेकिन इराक़ के मुशरिकाना निज़ाम से मुवाफ़िक़त न कर सके।

एक ख़ुदा की परस्तिश की ख़ातिर उन्होंने उस इलाक़े को छोड़ दिया, जो कई ख़ुदाओं की परस्तिश का मरकज़ बना हुआ था। वे इराक़ के सरसब्ज़ मुल्क को छोड़कर अरब के ख़ुश्क शहर में चले गए, जहाँ की सुनसान दुनिया में ख़ालिक़ और मख़्लूक़ के दरम्यान कोई और चीज़ रुकावट न थी। यहाँ उन्होंने एक ख़ुदा के घर की तामीर की।

हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल के इस अमल को दूसरे लफ़्ज़ों में इस तरह बयान किया जा सकता है कि उन्होंने कई ख़ुदाओं की पनाह लेने के बजाए एक ख़ुदा की पनाह ली और इस मक़सद के लिए बैतुल्लाह (काबा) की तामीर की, जो सिर्फ़ एक ख़ुदा की इबादत का आलमी मरकज़ है। यही मरकज़े तौहीद हज के मरासिम की अदायगी का मरकज़ भी है।

हज की इबादत में जो रस्म अदा की जाती हैं, उनके कुछ पहलुओं को देखिये। हज के दौरान हाजी सबसे ज़्यादा जो कलमा बोलता है, वह यह है— "लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक, लब्बैक ला शरीका लका लब्बैक, इन्नल हम्दा, वन्नेमता लका वलमुल्क, ला शरीका लक।" यानी हाज़िर हूँ ख़ुदाया, मैं हाज़िर हूँ, हाज़िर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं, मैं हाज़िर हूँ,तारीफ़ और नेमत तेरे ही लिए है और बादशाही भी, तेरा कोई शरीक नहीं।

हाजी की ज़बान से बार-बार यह अल्फ़ाज़ कहलवाकर तमाम लोगों के अंदर यह नफ़्सियात पैदा की जाती है कि बड़ाई सिर्फ़ एक अल्लाह की ही है। उसके सिवा जितनी भी बड़ाइयाँ हैं, सब इसलिए हैं कि वह सब इसी एक अज़ीमतर बड़ाई में गुम हो जाएँ। यह अहसास इज्तिमाइयत का सबसे बड़ा राज़ है। इज्तिमाइयत और इत्तिहाद हमेशा वहाँ नहीं होता, जहाँ हर आदमी अपने आपको बड़ा समझ ले। इसके बरक्स जहाँ तमाम लोग किसी एक के हक़ में अपनी इनफ़िरादी बड़ाई से दस्तबरदार हो जाए, वहाँ इज्तिमाइयत और इत्तिहाद के सिवा कोई और चीज़ नहीं पाई जाती। बेइत्तेहादी, बड़ाइयों की तक़्सीम का नाम है और इत्तिहाद बड़ाइयों की वहादत का।

इसी तरह हज का एक अहम रुक्न तवाफ़ है। दुनियाभर के लोग जो हज के वक़्त मक्का में जमा होते हैं, वे सबसे पहले काबा का तवाफ़ करते हैं। यह उस बात का अमली इक़रार है कि आदमी अपनी कोशिशों का मरकज़ व मेहवर सिर्फ़ एक नुक़्ते को बनाएगा। वह एक ही दायरे में हरकत करेगा। यह ऐन वही मरकज़ीयत है, जो मादी सतह पर निज़ामे-शम्शी (solar system) में नज़र आती है। निज़ामे-शम्शी के तमाम सय्यारे एक ही सूरज को मरकज़ी नुक़्ता बनाकर उसके चारों तरफ़ घूमते हैं। इसी तरह हज यह सबक़ देता है कि

इंसान एक ख़ुदा को अपना मरजा (center) बनाकर उसके दायरे में घूमे।

इसके बाद हाजी सफ़ा और मरवा के दरम्यान सअी करता है। वह सफ़ा से मरवा की तरफ़ जाता है और फिर मरवा से सफ़ा की तरफ़ लौटता है। इस तरह वह सात चक्कर लगाता है। यह अमल की ज़बान में इस बात का सबक़ है कि आदमी की दौड़-धूप एक हद के अंदर बँधी हुई होनी चाहिए। अगर आदमी की दौड़-धूप की कोई हद न हो तो कोई एक तरफ़ भागकर निकल जाएगा तो कोई दूसरी तरफ़; लेकिन जहाँ दौड़-धूप की हदबंदी कर दी गई हो, वहाँ हर आदमी बँधा रहता है। वह बार-बार वहीं लौटकर आता है, जहाँ उसके दूसरे भाई सरगर्मियाँ जारी किए हों।

यही हज की दूसरी तमाम रस्मों का हाल है। हज के दूसरे तमाम मरासिम मुख़्तलिफ़ पहलुओं से एक ही निशाने पर चलते हुए नज़र आते हैं। ऐसा मालूम होता है कि जैसे कोई रब्बानी मक़नातीस है, जो लोहे के तमाम टुकड़ों को एक नुक़्ते पर खींचते चला जा रहा है।

मुख़्तलिफ़ मुल्कों के ये लोग जब मुक़ाम-ए-हज के क़रीब पहुँचते हैं तो सब-के-सब अपना क़ौमी लिबास उतार देते हैं और सब-के-सब एक ही मुश्तरक लिबास पहन लेते हैं, जिसे अहराम कहा जाता है। अहराम बाँधने का मतलब यह है कि बग़ैर सिली हुई एक सफ़ेद चादर नीचे तहमद की तरह पहन ली जाए और इसी तरह एक सफ़ेद चादर ऊपर से जिस्म पर डाल ली जाए। इस तरह लाखों इंसान एक ही वज़ा और एक ही रंग के लिबास में मलबूस हो जाते हैं।

ये सारे लोग मुख़्तलिफ़ मरासिम अदा करते हुए आख़िरकार अरफ़ात के वसीअ मैदान में इकट्ठा होते हैं। उस वक़्त एक अजीब मंज़र होता है। ऐसा मालूम होता है, जैसे इंसानों के तमाम फ़र्क़ अचानक मिट गए हों। इंसान अपने तमाम इख़्तिलाफ़ को खोकर ख़ुदाई वह्दत में गुम हो गए हैं। तमाम इंसान एक हो गए हैं, जैसे उनका ख़ुदा एक है। अरफ़ात के वसीअ मैदान में जब अहराम बाँधे हुए तमाम हाजी जमा होते हैं, उस वक़्त किसी बुलंदी से देखा जाए तो ऐसा नज़र आएगा की ज़बान, रंग, हैसियत और जिंसियत के फ़र्क़ के बावजूद सब-के-सब इंसान बिलकुल एक हो गए हैं। उस वक़्त मुख़्तलिफ़ क़ौमियतें एक

ही बड़ी क़ौमियत बनती हुई नज़र आती हैं। हक़ीक़त यह है कि हज इज्तिमाइयत का इतना बड़ा मुज़ाहिरा है कि उसकी कोई दूसरी मिसाल ग़ालिबन दुनिया में कहीं और नहीं मिलेगी।

काबा मुसलमानों का क़िब्ला-ए-इबादत है। मुसलमान हर रोज़ पाँच वक़्त उसकी तरफ़ मुंह करके नमाज़ पढ़ते हैं। गोया सारी दुनिया के मुसलमानों का इबादती क़िब्ला एक ही है। आम हालत में वह एक तसव्वुराती हक़ीक़त होता है, लेकिन हज के दिनों में मक्का पहुँचकर वह एक आँखों देखी हक़ीक़त बन जाता है।

सारी दुनिया के मुसलमान यहाँ पहुँचकर जब उसकी तरफ़ रुख़ करके नमाज़ अदा करते हैं तो महसूस तौर पर दिखाई देने लगता है कि तमाम दुनिया के मुसलमानों का मुश्तरक क़िब्ला एक ही है।

काबा एक चौकोर तरह की इमारत है। इस इमारत के चारों तरफ़ गोल दायरे में सारे लोग घूमते हैं, जिसे तवाफ़ कहा जाता है। वे सफ़-बा-सफ़ होकर उसके चारों तरफ़ गोल दायरे में लोगों को एक होने का और मिलकर काम करने का सबक़ देते हैं। वह एक आवाज़ पर हरकत करने का अमली मुज़ाहिरा है।

एकता के इस अज़ीम तरबियती निज़ाम का यह भी एक ज़ाहिरी पहलू है कि तमाम लोगों से उनके इनफिरादी लिबास उतरवाकर सबको एक ही सादा लिबास पहना दिया जाता है। यहाँ बादशाह और रिआया का फ़र्क़ मिट जाता है। यहाँ मशरिक़ि लिबास और मग़रिबी लिबास के भेद-भाव फ़िज़ा में गुम हो जाते हैं। अहराम के मुश्तरिक लिबास में तमाम लोग इस तरह नज़र आते हैं, जैसे कि तमाम लोगों की सिर्फ़ एक हैसियत है। तमाम लोग सिर्फ़ एक ख़ुदा के बंदे हैं। इसके सिवा किसी को कोई और हैसियत हासिल नहीं।

हज के मुक़र्ररह मरासिम अगरचे मक्का में ख़त्म हो जाते हैं, मगर बेश्तर हाजी हज से फ़ारिग़ होकर मदीना भी जाते हैं। मदीने का पूराना नाम यस्रिब था, लेकिन पैग़ंबरे-इस्लाम ने अपनी ज़िंदगी में उसको अपना मरकज़ बनाया। उस वक़्त से उसका नाम मदीनातुन्नबी (नबी का शहर) पड़ गया। मदीना उसी का

इख़्तसार है। मदीने में रसूल की बनाई हुई मस्जिद है। यहाँ आपकी क़ब्र है। यहाँ आपकी पैग़ंबराना ज़िंदगी के निशानात बिखरे हुए हैं।

इन हालात में हाजी जब मदीना पहुँचते हैं तो यह उनके लिए मज़ीद इत्तिहाद और इज्तिमाइयत का अज़ीम सबक़ बन जाता है। यहाँ की मस्जिदे-नबवी में वे उस याद को ताज़ा करते हैं कि उनका रहनुमा सिर्फ़ एक है। वे यहाँ से यह अहसास लेकर लौटते हैं कि उनके अंदर ख़्वाह कितने ही जुगराफ़ी और क़ौमी फ़र्क़ पाए जाते हों, उन्हें एक ही पैग़ंबर के बताए हुए रास्ते पर चलना है। उन्हें एक मुक़द्दस हस्ती को अपनी ज़िंदगी का रहनुमा बनाना है। वे ख़्वाह कितने ही ज़्यादा और कितने ही मुख़्तलिफ़ हों, लेकिन उनका ख़ुदा भी एक है और उनका पैग़ंबर भी एक।

हज की स्पिरिट

क़ुरआन में हज के ताल्लुक़ से दो आयतें आई हैं, जिनका तर्जुमा यह है—

"लोगों में हज का ऐलान कर दो। वे तुम्हारे पास आएँगे, पैरों पर चलकर और दुबले ऊँटों पर सवार होकर जो कि दूर-दराज़ के रास्तों से आएँगे, ताकि वे अपने फ़ायदे की जगहों पर पहुँचे और चंद मालूम दिनों में उन चौपायों पर अल्लाह का नाम लें जो उसने उन्हें बख़्शें हैं।"

(क़ुरआन, 22:27-28)

यहाँ मुनाफ़े से मुराद ईमानी मुनाफ़े हैं। हज के मौक़े पर उन ईमानी मुनाफ़े ज़रिया वह चीज़ें हैं, जिनको क़ुरआन में दूसरे मुक़ाम पर शाइरुल्लाह (अल-बक़रह, 2:158) कहा गया है यानी अल्लाह की यादगारें। अल्लाह की यादगारों से मुराद तौहीद के मिशन की वे तारीख़ी यादगारें हैं, जो पैग़ंबरों के ज़रिये उस इलाक़े में क़ायम हुई। हज के मौक़े पर जो मरासिम अदा किए जाते हैं, वे सब उसी पैग़ंबराना तारीख़ की याददिहानी के लिए हैं।

अहराम का मतलब यह है कि माद्दी कल्चर से निकलकर आदमी रब्बानी कल्चर में दाख़िल हो गया। सफ़ा और मरवा के दरम्यान सअी करके हाजी उस अहद की तज्दीद करता है कि वह इस्माईल की माँ हाजरा की तरह अपने आपको दीन-ए-तौहीद के लिए वक़्फ़ करेगा। जमरात पर कंकरियां मारकर वह अलामती ज़बान में यह कह रहा होता है कि मैं उसी तरह शैतान को अपने आपसे दूर भगाऊँगा, जिस तरह पैग़ंबर इब्राहीम ने शैतान को अपने आपसे दूर भगाया। क़ुर्बानी करके हाजी यह अहद करता है कि वह दुनिया परस्ती को छोड़कर ख़ुदापरस्ती की ज़िंदगी इख़्तियार करेगा।

अरफ़ात के मैदान में इकट्ठा होकर तमाम हाजी उस वक़्त को याद करते हैं, जब मैदान-ए-हशर में अपना हिसाब देने के लिए हाज़िर किए जाएँगे। आख़िर में हाजी पैग़ंबरे-इस्लाम की उस पुकार को लेकर वापस होता है, जो पैग़ंबरे-इस्लाम ने 1400 साल पहले लगायी थी —

"अल्लाह ने मुझे तमाम लोगों के लिए रहमत बनाकर भेजा है, इसलिए तुम मेरी तरफ़ से तमाम इंसानों को मेरा पैग़ाम पहुँचा दो।"

(अल-मुअजमुल कबीर (अल-तबरानी), 8/20)

इसमें सबक़ का पहलू यह है कि ऐ मुसलमानो ! तुम लोग ख़ुदा के दीन की आलमी पैग़ाम रसानी में सरगर्म हो जाओ। तुम्हारी दौड़-धूप, तुम्हारा ठहरना और चलना, तुम्हारा चुप होना और बोलना, सब कुछ इसी दावती मिशन के लिए वक़्फ़ हो जाए।

हज को अफ़ज़ल इबादत कहा गया है। यह कोई पुरइसरार बात नहीं है, बल्कि यह एक मालूम हक़ीक़त है। हज की सालाना इबादत के दौरान जो अमल किए जाते हैं, उन पर ग़ौर करने से यह वाज़ेह होता है कि हज अपने कसीर फ़वायद की बिना पर इस क़ाबिल है कि इसे अफ़ज़ल इबादत कहा जाए। हज में सारी दुनिया के मुसलमान मुख़्तलिफ़ इलाक़ों से चलकर काबे की सरज़मीन में पहुँचते हैं।

यह सफ़र पत्थरों का सफ़र नहीं होता, बल्कि ज़िंदा इंसानों का सफ़र होता है— ऐसे इंसान जो देखने और सुनने की सलाहियत रखते हैं। इस तरह

जब ये लोग हज के मौसम में दुनिया के मुख़्तलिफ़ इलाक़ों से निकलकर हिजाज़ की तरफ़ रवाना होते हैं तो इसका फ़ितरी नतीजा यह होता है कि एक आलमी हलचल वजूद में आती है। इस ऐतबार से हज के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह आलमी सतह पर इंसानों का एक इबादती मोबलाइजेशन (mobilization) है।

लाखों की तादाद में जब अह्ले-ईमान अपने घरों से निकलकर हज के सफ़र पर रवाना होते हैं तो उस दौरान बार-बार उनका इंट्रैक्शन दूसरों से होता है। उस इंटरेक्शन के दौरान अपने आप ऐसा होता है कि मुख़्तलिफ़ मुल्कों के लोगों के दरम्यान इस्लाम के तआरुफ़ का शुरू हो जाता है। हाजी को इस सफ़र के दौरान नई-नई चीज़ें देखने को मिलती हैं। इससे उसके तजरबात में इज़ाफ़ा होता है। इस दौरान उसकी ज़िंदगी मुख़्तलिफ़ मराहिल से गुज़रती है।

इस तरह हज का सफ़र उसके लिए दीनी सियाहत के हममायनी बन जाता है। इस सफ़र के दौरान बार-बार दूसरे हाजियों से उसके इख़्तिलाफ़ात होते हैं , लेकिन 'वला जिदाला फ़िल हज्जी' (क़ुरआन, 2:197) यानी 'हज में लड़ाई-झगड़ा नहीं है' के हुक्म-रब्बानी के तहत वह उन इख़्तिलाफ़ात पर तहम्मुल का तरीक़ा इख़्तियार करता है। इस तरह हज उसके लिए इख़्तिलाफ़ के बावजूद इत्तिहाद की तरबियत बन जाता है।

हक़ीक़त यह है कि हज एक जामे इबादत है। हज का अमल एक ऐसी तरबियत है, जिसमें वह तमाम पहलू शामिल हो जाते हैं, जो इस्लाम में हर फ़र्द से मतलूब हैं। ताहम हज के फ़ायदे सिर्फ़ उस इंसान को मिलते हैं, जो ज़िंदा शऊर के साथ हज करे।

हक़्क़ीअहमियत

पैग़ंबरे-इस्लाम के तरीक़े का एक पहलू यह था कि आपकी नज़र हमेशा हक़ाइक़ (spirit) पर रहती थी, न कि ज़ाहिर सूरत पर। ज़वाहिर में अगर बेख़बरी की बिना पर कोई फ़र्क़ हो जाए तो उसे नाक़ाबिल लिहाज़ समझते थे। अलबत्ता हक़ीक़ी अहमियत वाली बातों के बारे में आपका रवैया हमेशा बहुत सख़्त होता था।

पैग़ंबरे-इस्लाम के आख़िरी हज का एक वाक़या अल-बुख़ारी, मुस्लिम और अबू-दाऊद में थोड़े-थोड़े लफ़्ज़ी फ़र्क़ के साथ आया है। यह आपकी ज़िंदगी का आख़िरी साल था। आप हज के फ़राइज़ अदा करने के बाद मीना में बैठे हुए थे। लोग आपके पास आते और हज के मसाइल दरयाफ़्त करते। कोई कहता कि मुझे मसला मालूम न था, चुनाँचे मैंने ज़िबह करने से पहले बाल मुँड़वा लिए। कोई कहता कि मैंने रमी से पहले क़ुर्बानी कर ली वग़ैरह-वग़ैरह।

आप हर एक से कहते कि कर लो, कोई हर्ज नहीं। इसी तरह बार-बार लोग आते रहे और आगे-पीछे की बाबत सवाल करते रहे। आप हर एक से यही कहते कि कोई हर्ज नहीं, कोई हर्ज (नुक़्सान) नहीं— ला हर्जा, ला हर्जा (मसनद अहमद, हदीस नंबर 1857)।

अबू दाऊद की रिवायत नंबर 2015 में इन अल्फ़ाज़ का इज़ाफ़ा है— कर लो कोई हर्ज नहीं। हर्ज तो उस शख़्स के लिए है, जो एक मुसलमान को बेइज़्ज़त करे। ऐसा ही शख़्स ज़ालिम है। यही वह शख़्स है, जिसने हर्ज किया और हलाक़ हुआ।

दीन में असल अहमियत मायने की है, न कि ज़वाहिर की। एक शख़्स ज़ाहिरी चीज़ों का ज़बरदस्त एहतमाम करे, लेकिन मअनवी पहलू के मामले में वह ग़ाफ़िल हो तो ऐसा शख़्स इस्लाम की नज़र में बेक़ीमत हो जाएगा। अल्लाह हमेशा आदमी की नियत को देखता है। नियत अगर अच्छी है तो

ज़ाहिरी चीज़ों में कमी या फ़र्क़ को नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है, लेकिन अगर आदमी की नियत अच्छी न हो तो अल्लाह की नज़र में उसकी कोई क़ीमत नहीं, चाहे उसने ज़वाहिर के मामले में कितना ही ज़्यादा एहतमाम कर रखा हो। ज़ाहिरी ख़ुशनुमाई से इंसान फ़रेब में आ सकता है, लेकिन ज़ाहिरी खुशनुमाई की ख़ुदा की नज़दीक कोई क़ीमत नहीं।

हज: एक इंतिबाह

एक हदीस इन अल्फ़ाज़ में आई है—

"लोगों पर एक ऐसा ज़माना आएगा, जबकि मालदार लोग तफ़रीह के लिए हज करेंगे और उनके दरम्यानी दर्जे के लोग तिजारत के लिए हज करेंगे और उनके उलेमा दिखावे और शोहरत के लिए हज करेंगे और उनके ग़रीब लोग माँगने के लिए हज करेंगे।" (कंज़ुल उम्माल, हदीस नंबर 12363)

यह हदीस बहुत डरा देने वाली है। इसकी रोशनी में मौजूदा ज़माने के मुसलमानों को ख़ास तौर पर अपना अहतसाब करना चाहिए। उन्हें ग़ौर करना चाहिए कि उनका हज हदीस-ए-रसूल का मिस्दाक़ तो नहीं बन गया है। मालदार लोग सोचें कि उनके हज में तक़्वे की स्पिरिट है या सैर व तफ़रीह की स्पिरिट। आम लोग यह सोचें कि वे दीनी फ़ायदे के लिए हज करने जाते हैं या तिजारती फायदे के लिए। उलेमा ग़ौर करें कि वे अब्दियत का सबक़ लेने के लिए बैतुल्लाह जाते हैं या अपनी लीडरी को ऊँचा को बुलंद करने के लिए। इसी तरह ग़रीब लोग सोचें कि हज को उन्होंने ख़ुदा से माँगने का ज़रिया बनाया है या इंसानों से माँगने का ज़रिया।

इस हदीस-ए-रसूल में पेशिनगोई की ज़बान में बताया गया है कि उम्मत पर जब ज़वाल आएगा तो उस वक़्त लोगों का हाल क्या होगा। दौर-ए-उरूज में उम्मत का हाल यह होता है कि दीन का रूहानी पहलू ग़ालिब रहता है और उसका माद्दी पहलू दबा हुआ होता है। दौर-ए-ज़वाल में

बरक्स तौर पर यह होता है कि लोगों के दरम्यान दीन का रूहानी पहलू दब जाता है और उसका माद्दी पहलू हर तरफ़ नुमायाँ हो जाता है। पहले दौर में तक़वे की हैसियत उसूल की होती है और माद्दी चीज़ें सिर्फ़ ज़रूरत के दर्जे में पाई जाती हैं। इसके बरक्स दौर-ए-ज़वाल में माद्दी चीज़ें असल बन जाती हैं और कुछ ज़ाहिरी और नुमाइशी चीज़ों का का नाम तक़वा बन जाता है। यही मामला हज और उमरा के साथ भी पेश आता है और इस्लाम की दूसरी इबादत के साथ भी।

हज का फ़ायदा

एक रिवायत के मुताबिक़ पैग़ंबरे-इस्लाम ने फ़रमाया कि एक मोमिन जब हज अदा करके अपने घर वापस लौटता है तो वह उस दिन की तरह हो जाता है, जबकि उसकी माँ ने जनम दिया था— रजाअ कयूमी वलादतहु उम्मुहु (सही बुख़ारी, हदीस नंबर 1820)।

He returns after Hajj like a newborn child.

इस हदीस को समझने के लिए एक और हदीस को देखिए। एक और रिवायत के मुताबिक़ पैग़ंबरे-ए-इस्लाम ने फ़रमाया कि हर पैदा होने वाला फितरत पर पैदा होता है। फिर उसके वालिदैन उसे यहूदी और मजूसी और नसरानी बना देते हैं। (सही बुख़ारी, हदीस नंबर 1, 385)

इन दोनों हदीसों पर ग़ौर करने से मालूम होता है कि हज की इबादत अगर सही स्पिरिट के साथ की जाए तो वह हाजी के लिए वही चीज़ें बन जाती है, जिसे आजकल की ज़बान में डी-कंडीशनिंग (de-conditioning) कहा जाता है।

असल बात यह है कि अपने माहौल के ऐतबार से हर आदमी की कंडीशनिंग होती रहती है। हज की इबादत उस कंडीशनिंग को ख़त्म करने का ज़रिया है। हज एक ऐसा कोर्स है, जो हर आदमी की कंडीशनिंग को ख़त्म करके

उसे दोबारा उसकी असल फितरत पर पहुँचा देता है। दूसरे लफ़्ज़ों में यह कि जो शख़्स इससे पहले मिस्टर कंडीशंड (mr. conditioned) था, हज के बाद मिस्टर नेचर (mr. nature) बन जाता है।

हज का यह फ़ायदा सिर्फ़ उस शख़्स को मिलता है, जो हज की स्पिरिट के साथ हज की इबादत को अंजाम दे। जो आदमी सिर्फ़ हज के ज़ाहिरी मरासिम अदा करे। उसके लिए हज सिर्फ़ एक आउटिंग है, इससे ज़्यादा और कुछ नहीं।

हज के बाद

पैग़ंबरे-इस्लाम ने अपनी उम्र के आख़िरी हिस्से में हज अदा किया। उस मौक़े पर तक़रीबन तमाम सहाबा इकट्ठा हुए। हज के दौरान अपने ऊँट पर बैठकर एक ख़ुत्बा दिया। यह ख़ुत्बा हज्जतुल विदा के नाम से मशहूर है। इस ख़ुत्बे में आपने अपने सहाबा को मुख़ातिब करते हुए कहा—

"जो यहाँ मौजूद है, वह उन तक पहुँचा दे जो यहाँ नहीं है।"

(सही अल बुख़ारी, हदीस नंबर 1741)

ग़ालिबन पैग़ंबरे-इस्लाम के इसी हुक्म का यह नतीजा था कि उसके बाद तमाम लोग दावते-इलल्लाह के पैग़ंबराना काम में लग गए। उन्होंने उस वक़्त की आबाद दुनिया के बड़े हिस्से में दीन का पैग़ाम पहुँचा दिया। इससे मालूम होता है कि हज का ख़ात्मा दरअसल एक नए अमल का आग़ाज़ है। जहाँ हज के मरासिम ख़त्म होते हैं, वहाँ से एक और ज़्यादा बड़ा हज शुरू हो जाता है। यह दावत-इलल्लाह है। गोया कि हज एक ट्रेनिंग है और दावते-इलल्लाह इस ट्रेनिंग का अमली इस्तेमाल।

एक हदीस के मुताबिक़ हज के मरासिम हज़रत इब्राहीम की ज़िंदगी के मुख़्तलिफ़ मराहिल का अलामती दोहराना है। हज़रत इब्राहीम की पूरी ज़िंदगी दावते-इलल्लाह की ज़िंदगी थी। यही तरीक़ा हर मोमिन को अपनी ज़िंदगी में इख़्तियार करना है। मसलन अहराम क्या है? वह सादा ज़िंदगी की अलामत है। तवाफ़ से मुराद डेडिकेशन (dedication) है। सअी इस बात का पैग़ाम है की

मोमिन की दौड़-धूप ख़ुदा की तरफ़ होनी चाहिए। जानवर का ज़बीहा क़ुर्बानी वाली ज़िंदगी की तालीम है। रमी जमारात का मतलब यह है कि आदमी अपने आपको शैतान से दूर भगाए। लब्बैक-लब्बैक कहते हुए अरफ़ात के मैदान में पहुँचना ख़ुदा के सामने हाज़िरी को याद दिलाता है वग़ैरह।

हज बड़ा हज है और उमरा छोटा हज। दोनों का पैग़ाम एक है। शरीयत का यह मक़सद नहीं कि बार-बार लोग हज और उमरा करते रहें। शरीयत का यह मक़सद है कि लोग एक बार हज और उमरा करने के बाद उसकी स्पिरिट के मुताबिक़ ज़िंदगी गुज़ारें और उसके पैग़ाम को सारी दुनिया में पहुंचाएं।

> इस्लामी ज़िंदगी का खुलासा यह है कि अपने आपको कंट्रोल में रखकर ज़िंदगी गुज़ारी जाए।

हज की मानवियत

कुछ लोग मुझसे मिले। उन्होंने कहा कि हमारे लिए दुआ कीजिए। हमने बाइसिकल के ज़रिये हज करने का प्रोग्राम बनाया है। इसे पहले भी हाजियों के कई ग्रुप मुझसे मिले हैं, जो इसी क़िस्म की बातें करते थे। मसलन कोई बताता था कि हम ऊँट के ज़रिये हज का सफ़र करने जा रहे हैं। कोई बताता था कि हम पैदल हज का सफर करने जा रहे हैं वग़ैरह-वग़ैरह। ये लोग हज की सूरत को जानते हैं, लेकिन वे हज की मानवियत (spirit) को नहीं जानते। क़ुरआन में आया है कि हज के लिए सफ़र करो और उसके मुनाफ़े को हासिल करो। (क़ुरआन, 22:28)

मुनाफ़े का लफ़्ज़ी मतलब है फ़ायदा (benefit), लेकिन इसका मतलब माद्दी फ़ायदा नहीं है, बल्कि मअनवी फ़ायदा है यानी हज से हिकमत का सबक़ हासिल करो। हज से ज़िंदगी की हिकमतें दरयाफ़्त करो। हज की इबादत पर ग़ौर करके उससे राज़-ए -हयात को जानो।

मसलन आप हज के लिए मक्का जाएँ और काबे का तवाफ़ करते हुए आप देखेंगे कि काबे की इब्राहीमी इमारत अब वहाँ मौजूद नहीं है। पैग़ंबर

इब्राहीम ने काबा को लंबी सूरत में बनाया था, जबकि मौजूदा काबा चौकोर सूरत में है, जो कि क़दीम मक्का के लोगों ने बतौर ख़ुद तामीर किया था। क़दीम काबा की तक़रीबन एक तिहाई जगह हतीम की सूरत में बग़ैर छत के है। पैग़ंबरे-इस्लाम और आपके सहाबा ने इसी काबा का तवाफ़ किया। उन्होंने काबे को दोबारा इब्राहीमी सूरत में बनाने की कोशिश नहीं की।

यह वाक़या बताता है कि पैग़ंबरे-इस्लाम की एक सुन्नत वह है जिसको स्टेटस-कोइज़्म (status quoism) कहा जा सकता है यानी मौजूदह हालत पर नई तामीर की कोशिश करना। गोया कि मौजूद हालत को बदलने की तहरीक चलाना सुन्नते-रसूल नहीं है, बल्कि सुन्नते-रसूल यह है कि मौजूद हालत को छेड़े बग़ैर नई तामीर मंसूबा बनाया जाए। मौजूदा ज़माने की मुस्लिम तहरीकें सब-की-सब उसके ख़िलाफ़ वर्ज़ी कर रही हैं। हर तहरीक के लीडर यह चाहते हैं कि मौजूदा हालत को बदलें, उसके बाद अपने मंसूबे के मुताबिक़ नई तामीर का काम करें। यह तरीक़ा बिला शुबा सुन्नते-रसूल के ख़िलाफ़ है।

असल यह है कि मिल्लत की नई तामीर का काम मुकम्मल मायनों में एक मुस्बत काम है। जब आप देखें कि मौजूदा सूरत यह है कि मुआमलात पर अमलन किसी गिरोह का क़ब्ज़ा क़ायम है तो ऐसी हालत में नई तामीर का मंसूबा कामयाब तौर पर सिर्फ़ उस वक़्त किया जा सकता है, जबकि उसको ग़ैर नज़ाई मंसूबे की बुनियाद पर अंजाम दिया जाए। अगर नए क़ायदीन यह करें कि पहले क़ाबिज़ गिरोह से लड़कर उसको हटाएँ और वह पहले स्टेटस- कोइज़्म को बदलें और उसके बाद नई तामीर का आग़ाज़ करें तो ऐसा मंसूबा हमेशा टकराव से शुरू होगा। ऐसे मंसूबे का आग़ाज़ तख़रीब से शुरू होगा, न कि तामीर से। चुनाँचे ऐसा मंसूबा अपने आग़ाज़ ही में नेज़ाई (controversial) बन जाएगा। लोगों की ताक़त ग़ैर ज़रूरी क़िस्म के टकराव पर चलने लगेगी।

इसके बरक्स, उसके स्टेटस-कोइज़्म को बरक़रार रखते हुए अपना काम शुरू कर दिया जाए तो टकराव की नौबत नहीं आएगी, बल्कि तामीर का काम अव्वल दिन से तामीर के उसूल पर जारी हो जाएगा। अब एक लम्हा भी तख़रीब में ज़ाया नहीं होगा।

मवाक़े दर्याफ़्त करना

मक्का अरब का मरकज़ी शहर था। क़ुरैश ने मक्का में दारुल-नदवा क़ायम कर रखा था। दारुननदवा क़बाइल पार्लियामेंट थी। यहाँ तमाम अहम उमूर के फ़ैसले किए जाते थे। पैग़ंबरे-इस्लाम के दादा अब्दुल मुत्तलिब दारुननदवा के मुमताज़ मेंबरों में से एक थे। आम रिवाज के मुताबिक़ एक हौसलामंद लीडर के लिए पहला टारगेट यह था कि वह दारुल-नदवा का रुक्न बनने की कोशिश करे, जो गोया उस वक़्त के अरब में सियासी ताक़त की मरकज़ की हैसियत रखता था, लेकिन पैग़ंबरे-इस्लाम ने दारुल-नदवा में दाख़िले की कोई कोशिश नहीं की। हत्ता कि उन्होंने यह मुतालबा भी नहीं किया कि अपने दादा अब्दुल मुत्तलिब की ख़ाली सीट उन्हें दी जाए। दारुननदवा के मामले में पैग़ंबरे-इस्लाम ने वह पुर अमन तरीक़ा अपनाया जिसको स्टेटस-कोइज़्म कहा जाता है यानी मौजूदा सूरत से टकराव न करना, बल्कि जो मौजूदा सूरत है, उसको उसी सूरत में क़बूल कर लेना, मगर पैग़ंबरे-इस्लाम का स्टेटस- कोइज़्म सादा तौर पर सिर्फ़ स्टेटस-को-इस्म न था, बल्कि वह मुसबत स्टेटस-कोइज़्म (positive status quoism) था यानी वक़्त के निज़ाम से टकराव किए बग़ैर मौजूद मवाक़े को दरयाफ़्त करके उसे इस्तेमाल करना। इस तरीक़ेक़ार को फार्मूला की ज़बान में इस तरह कहा जा सकता है—

Ignore the problem, avail the opportunities.

हज बैतुल्लाह के बाद

क़ुरआन की सूरह बक़रह में हज का हुक्म आया है। इस सिलसिला-ए-कलाम की एक आयत यह है— “फिर जब तुम अपने हज के मनासिक पूरे कर लो तो अल्लाह को याद करो, जिस तरह तुम पहले अपने बाप-

दादा को याद करते थे, बल्कि उससे भी ज़्यादा" (क़ुरआन, 2:200)। हज के मनासिक की अदायगी के बाद ज़्यादा-से-ज़्यादा अल्लाह का ज़िक्र करने का मतलब यह नहीं है कि कल्माते-ज़िक्र का ब-कसरत विर्द किया जाए, बल्कि उससे मुराद दावत-इलल्लाह है यानी हज की इब्राहीमी सुन्नत की अदायगी के ज़रिये जो स्पिरिट तुमने अपने अंदर पैदा की है, उसे लेकर दुनिया में फैल जाओ और अल्लाह के पैग़ाम को दुनिया में बसने वाले तमाम इंसानों तक पहुँचा दो और हर साल हज के बाद यही दावती काम करते रहो।

हज के बाद के अमल से मुराद दावत यानी तमाम इंसानों को ख़ुदा के क्रिएशन प्लान से आगाह करना है। इस तफ़्सीर की बुनियाद ख़ुद सुन्नते-रसूल है। रिवायत में आता है कि रसूल ने अपने अस्हाब के साथ हज्जतुल विदा का फ़रीज़ा अदा किया। फिर हज से वापसी के बाद आप मदीना आए। वहाँ आपने एक मुफ़स्सिल ख़िताब में अपने अस्हाब को यह पैग़ाम दिया—

"बेशक अल्लाह ने मुझे भेजा है तमाम इंसानों के लिए रहमत बनाकर तो तुम मेरी तरफ़ से लोगों को पहुँचा दो। अल्लाह तुम्हारे ऊपर रहम फ़रमाए और तुम मेरे साथ इख़्तिलाफ़ न करो, जैसा कि ईसा इबन मरयम के हवारियों ने किया।" । उस के बाद रसूलुल्लाह ने अपने असहाब को अरब के बाहर दावत के लिए भेजा (सीरत इब्ने-हिशाम, 2:607)

उम्मते-मुस्लिमा का मिशन दावते-इलल्लाह है। हज का मक़सद यह है कि उम्मत के अफ़राद हर साल मक्का के तारीख़ी मुक़ाम पर इकट्ठे हों। यहाँ वे मुख़्तलिफ़ आमाल के अलामती अदाएगी के ज़रिये पैग़ंबर की दावती सुन्नत को याद करें और फिर दावते-इलल्लाह की स्पिरिट को लेकर दुनिया में फ़ैल जाएँ, जैसा कि अस्हाबे-रसूल इस दावती मक़सद के लिए दुनिया में फैले थे।

इख़वाने-इब्राहीम, इख़वाने-मुहम्मद

पैग़ंबरे-इस्लाम हज़रत मुहम्मद 570 ईस्वी में मक्का में पैदा हुए और 632 ईस्वी में मदीने में आपकी वफ़ात हुई। आपका ज़माना पैग़ंबर इब्राहीम से तक़रीबन ढाई हज़ार साल बाद का ज़माना है। आप पैग़ंबर इब्राहीम की दुआ (क़ुरआन, 2:129) के नतीजे में पैदा हुए। क़ुरआन में आप के बारे में एक आयत आई है, जिसका तर्जुमा यह है— "फिर हमने तुम्हारी तरफ़ वह्य की कि इब्राहीम के तरीक़े की पैरवी करो, जो यक्सू था और शिर्क करने वालों में से नहीं था।" (क़ुरआन, 16:123)

यह कोई सादा बात नहीं। यह दरअसल एक तारीख़ी हक़ीक़त का ऐलान है। पैग़ंबरे-इस्लाम और आपके अस्हाब वह लोग थे, जिन पर एक तारीख़ अपनी इन्तेहा तक पहुची। पैग़ंबर इब्राहीम ने अपनी ग़ैर मामूली क़ुर्बानी के ज़रिये मक्का में एक तारीख़ी अमल का आग़ाज़ किया था। यह तारीख़ी अमल अपने फ़ितरी मराहिल से गुज़रते हुए छठी सदी ईस्वी में अपने समापन (culmination) को पहुँचा था। उस वक़्त अरब में वे मख़सूस अफ़राद पैदा हुए, जो अपने रोल की बिना पर रसूल और अस्हाबे-रसूल कहे जाते हैं।

रसूल और अस्हाबे-रसूल की क़ुर्बानियों के ज़रिये सातवीं सदी ईस्वी में एक और तारीख़ी अमल शुरू हुआ। इस तारीख़ी अमल की तक्मील पर दोबारा तक़रीबन हज़ार साल का ज़माना गुज़रा। बीसवीं सदी ईस्वी में यह अमल अपनी तक्मील को पहुँच गया। अब दोबारा एक ऐसे गिरोह की ज़रूरत है, जो इस बात का मिस्दाक़ हो कि बाद को बनने वाला तारीख़ी सफ़र इसपर समापन हुआ हो।

अस्हाबे-रसूल के बाद यह दूसरा गिरोह होगा, जिसे हदीस-ए-रसूल में पेशगी तौर पर इख़वाने-रसूल (सही मुस्लिम, हदीस नंबर 249) का नाम दिया गया है। गोया कि पैग़ंबरे-इस्लाम और आपके अस्हाब इख़वाने-इब्राहीम थे और बाद को बनने वाला गिरोह इख़वाने-मुहम्मद होगा। इख़वाने-इब्राहीम ने दावती मिशन को आगे बढ़ाया था और अब इख़वाने-मुहम्मद इसी दावती मिशन को अगले मरहले तक पहुँचाएँगे।

हज का पैग़ाम

हज्जतुल विदा के मौक़े पर रसूल अल्लाह ने अपने अस्हाब को ख़िताब करते हुए कहा- “मेरी तरफ से पहुँचाओ उन लोगों तक, जिन तक नहीं पहुँचा है।” उम्मते-मुस्लिमा का मिशन दावत इलल्लाह है। हज का मक़सद यह है कि उम्मत के अफ़राद हर साल मक्का के तारीख़ी मुक़ाम पर मुजतमाअ हों। यहाँ वे मुख़्तलिफ़ आमाल की अलामती अदायगी के ज़रिये पैग़ंबर की दावती सुन्नत को याद करें और फिर दावत इलल्लाह की स्पिरिट को लेकर दुनिया में फैल जाएँ, जैसा कि अस्हाबे-रसूल इस दावती मक़सद के लिए दुनिया में फैले थे।
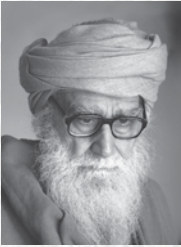
मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान ‘सेंटर फॉर पीस एंड स्प्रिचुएलिटी’, नई दिल्ली के संस्थापक हैं। मौलाना का मानना है कि शांति और आध्यात्मिकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं : आध्यात्मिकता शांति की आंतरिक संतुष्टि है और शांति आध्यात्मिकता की बाहरी अभिव्यक्ति। विश्व-शांति में अपने महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान प्राप्त है।

www.cpsglobal.org

www.goodwordbooks.com

ISBN 978-93-86589-80-4